Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VII, July-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

उ0 प्र0 का राजनीतिक सफरनामा तथा प्रमुख राजनीतिक दलों का संक्षिप्त इतिहास

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VII, July-2012, ISSN 2230-7540

उ0 प्र0 का राजनीतिक सफरनामा तथा प्रमुख राजनीतिक दलों का संक्षिप्त इतिहास

U. P. ka Rajnitik Safarnama Tatha Pramukh Rajnitik Dalon ka Sankshipt Itihaas

Mamta Devi[1] Dr. R. P. Panday[2]

[1]Research Scholar, Singhaniya University, Pachari Bari, Jhunjhunu, Rajasthan, India

[2]Associtae Prof. A. K. P. G. College, Shikohabad, Agra (U.P.)

---------------------------♦-----------------------------

यह सर्वविदित हो चुका है कि वर्तमान युग प्रतिनिधित्यात्मक प्रकृति का लोकतंत्र है, दल विहीन लोकतंत्र की एक कपोल कल्पना तो की जा सकती है, लेकिन उसके व्यवहारिक स्वरूप को नहीं पहिचाना जा सकता है किसी भी राष्ट्र में पल्वित लोकतंत्र विचारों की प्रतियोगिता तथा विकल्प की स्वतन्त्रता पर आधारित होता है और राजनीतिक दल इन दोनों के माध्यम है। वास्तव में लोकतंत्र के सफल संचालन हेतु राजनीतिक दलों का अस्तित्व अनिवार्य है। यदि हम किसी राष्ट्र में लोकतंत्र रूपी वृक्ष को पुष्पित एवं पल्वित देखना चाहते हैं तो राजनीतिक दलों के माध्यम से उस वृक्ष में खाद एवं जल देना परम आवश्यक है।

प्रत्येक राष्ट्र में दलीय व्यवस्था का विकास उस देश की सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पर निर्भर होता है। यही कारण है कि विभिन्न देशों की शासन व्यवस्थाओं में दलीय प्रणाली का स्वरूप अलग–अलग दिखाई देता है।

भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में दलों का अत्यन्त विशिष्ट भूमिका है। यद्यपि भारतीय संविधान में राजनीतिक दलों का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु भारत में बहुदलीय प्रणाली का विकास हुआ है। यहाँ बहुदलीय व्यवस्था भी यहाँ की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थ का परिणाम है।

राजनैतिक दलों का इतिहास एवं उनका संवैधानिक ढाँचा तथा घोषणा–पत्र बतलाने से पूर्व यह बतलाना आवश्यक हो जाता है कि राजनीतिक दलों को मान्यता किस प्रकार मिलती है, किस राज्य में कितना प्रभाव है और उ0प्र0 में कितने राज्य स्तरीय दल हैं। 1 फरवरी 2004 के निर्वाचन में 6 राष्ट्रीय दल तथा 45 राज्य स्तरीय राजनीतिक दल है। समय, परिस्थितियों और राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक विकास के संदर्भ में नये दल बनते हैं, विलय करते हैं और समाप्त हो जाते हैं। उ0प्र0 में दलीय व्यवस्था को समझने से पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि दलों का पंजीकरण तथा मान्यता चुनाव आयोग के समक्ष कैसे होती है ?

दलों का पंजीकरण निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है और पंजीकृत राजनीतिक दलों चाहे राष्ट्रीय स्तर के हों या राज्य स्तर के हों, को आरक्षित चुनाव चिन्ह आवंटित किया जाता है। 1952 में निर्वाचन आयोग द्वारा 14 दलों को राष्ट्रीय दल के रूप में 60 दलों को राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की गयी थी। 30 सितम्बर 2000 को निर्वाचन आयोग द्वारा मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी, जनता दल (यूनाइटेड) और जनतादल (सेकुलर) का राष्ट्रीय राजनीतिक दल का दर्जा समाप्त करने के निर्णय के कारण यह संख्या घटकर क्रमशः 4 और 48 हो गयी। बाद में 1 दिसम्बर 2000 को निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) नियमावली, 1968 में संशोधन की घोषणा करते हुये मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, की राष्ट्रीय दल की मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार वर्तमान में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की संख्या बढ़कर 5 है और राज्य स्तरीय राजनीतिक दल की संख्या 47 हो गयी। इसके अलावा भारत में पंजीकृत लेकिन गैर मान्यता प्राप्त 612 राजनीतिक दल हैं।

विभिन्न निर्वाचनों में मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों की संख्या का विवरण इस प्रकार है –

वर्ष	राष्ट्रीय दल	राज्य स्तरीय दल	कुल
1952	14	60	74
1957	4	12	16
1962	–	16	16
1967	–	21	21
1971	8	17	25
1980	6	19	25
1984	7	19	28
1989	8	20	28
1992	6	34	40
1994	6	35	41
1998	7	48	55
1999	7	49	56
2000	4	48	52
2004	5	47	52
2004	6	45	51
2009			

राजनीतिक दलों को मान्यता –

राजनीतिक दलों की मान्यता के मानक निर्वाचन आयोग द्वारा इसके लिये घोषित निर्वाचन प्रतीक आरक्षण और आवटन आदेश – 1968 के अधीन बनाये गये। जो भी राजनीतिक दल मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के रूप में अपना पंजीकरण कराना चाहता है। इसके लिये भारत निर्वाचन आयोग के समक्ष आवेदन देकर करा सकता है।

मान्यता के लिये आवेदन –

जब कोई राजनीतिक दल पंजीकरण कराने के लिये दिये जाने वाले आवेदन में निम्नलिखित तथ्यों का स्पष्ट उल्लेख करेगा।

1. उन राजनीतिक विचारों व सिद्धान्तों को जिन पर कोई भी दल आधारित है।

2. ऐसी नीतियाँ व लक्ष्य जिनका अनुशरण करना चाहता है।

3. अपने राजनीतिक सिद्धान्तों, नीतियों, लक्ष्यों और उद्देश्यों को कार्यान्वयन् करने के प्रयोजन के लिये अपने कार्यक्रम, कृत्य तथा क्रियान्वयन का उल्लेख।

4. उस दल के मुख्य अंगों के आधारों (चाहे उन्हें किसी भी नाम से पुकारा जाये) और अन्य सदस्यों के नाम।

5. निर्वाचकों के साथ दल के सम्बन्ध और जनता से प्राप्त समर्थन जो उसे उपलब्ध है तथा ऐसे सम्बन्ध और समर्थन का प्रमाण।

उक्त आवेदन पत्र में दिये गये विवरणों के आधार पर समाधान होने पर निर्वाचन आयोग पहले किसी दल को राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता देता है।

राज्य स्तरीय दल को मान्यता के आधार –

जो दल निम्नलिखित मानकों को पूरा करते हैं उन्हें राज्य स्तरीय दल की मान्यता प्रदान की जाती है।

1. ऐसे दल को जो लगातार 5 वर्ष तक राजनीतिक क्रिया–कलाप में संलग्न रहा हो।

2. लोकसभा के लिये उस राज्य से निर्वाचित प्रत्येक 25 सदस्यों या उस संख्या कि किसी भिन्न के पीछे कम से कम एक सदस्य निर्वाचन द्वारा भेज चुका हो।

3. राज्य में हुये लोकसभा अथवा विधानसभा के साधारण निर्वाचन में उस दल द्वारा खड़े किये गये अभ्यर्थियों द्वारा प्रदत्त विधि मान्य मतों की कुल संख्या उस राज्य में हुये साधारण निर्वाचन में निर्वाचन लड़ने वाले सभी अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त मतों की कुल संख्या के 4 प्रतिशत से कम न हो।

यदि उक्त शर्तें पूरी हो जाती है तो निर्वाचन आयोग किसी भी दल को राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता देता है और उसे चुनाव चिन्ह आरक्षित होता है। ऐसे मान्यता प्राप्त दल के विभाजन की स्थिति में आयोग यह निर्णय करता है कौन दल का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है।

1 दिसम्बर 2000 को निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) 1968 के किये गये संशोधन के अनुसाार किसी राजनीतिक दल को राज्य स्तरीय दल की मान्यता प्राप्त करने के लिये सम्बन्धित दल को लोकसभा या विधानसभ में चुनाव में डाले गये वैध मतों को कम से कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ–साथ राज्य विधान सभा की कम से कम 3 प्रतिशत सीटें अथवा 3 सीटें (इसमें से जो भी अधिक हो) को जीतना आवश्यक है।

राष्ट्रीय दल को मान्यता के आधार –

1 दिसम्बर 2000 को निर्वाचन आयोग ने चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) 1968 में संशोधन करते हुये राष्ट्रीय राजनीतिक दल की मान्यता के लिये नये मापदण्ड निर्धारित किये । नये नियमों के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर की मान्यता प्राप्त करने के लिये किसी भी राजनीतिक दला की लोकसभा या विधानसभा के चुनावों में 4 या अधिक राज्यों द्वारा कुल डाल गये वैध मतों का 6 प्रतिशत प्राप्त करने के साथ किसी राज्य या राज्यों से लोकसभा की कम से कम 4 सीटों पर विजय पाना आवश्यक होगा। लोकसभा 3 में से कम से कम 2 सीटें अर्थात लोकसभा की कुल 543 सीटों में से 11 सीटें जीतना आवश्यक होगी। ये सीटें कम से कम 3 राज्यों से होनी चाहिये। इससे पूर्व कोई दल यदि 4 राज्यों में राजनीतिक दल के रूप में निर्वाचन आयोग द्वारा मान्यता प्रदान कर दिये जाने की व्यवस्था थी। उस दल को भी राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता कर दी जाती थी, जिसमें राज्य में लोकसभा के साधारण निर्वाचन में कुल वैध पड़े मतों का 4 प्रतिशत प्राप्त किया है।

निर्वाचन आयोग द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार यदि कोई राजनीतिक दल राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय दल के रूप में अपनी मान्यता खो देता है तो उसे 6 वर्षों तक अपने पुराने चुनाव चिन्ह को बनाये रखने की छूट होगी। परन्तु मान्यता प्राप्त दल को प्राप्त होने वाली विशेष सुविधायें जैसे चुनाव के समय आकाशवाणी या दूरदर्शन पर निःशुल्क चुनाव प्रचार करने की छूट प्रदान नहीं की जायेगी।

उक्त मान्यता के संदर्भ में राजनीतिक दलों की संख्या बढ़ती गयी। इसलिये 1980 के बाद राजनीतिक दलों के इतिहास पर दृष्टिपात करना परम आवश्यक हो जाता है और तथी उ0प्र0 की समसामायिक राजनीति का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जा सकता है।

आज सुविधा की दृष्टि से राजनीतिक दलों को चार भागों में बाँट सकते हैं :–

1. राष्ट्रीय और धर्म निरपेक्ष दल

2. क्षेत्र अथवा राज्य स्तरीय दल

3. स्थानीय किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल

4. तदर्थ दल

1. राष्ट्रीय और धर्म निरपेक्ष दल –

ये भी दो प्रकार के हैं –

(1) बिना विचारधारा के दल

(2) विचारधारा से मुक्त दल

बिना विचारधारा के दल के रूप में काँग्रेस को माना जा सकता है। काँग्रेस को वैचारिक दृष्टि से तटस्थ कहा जा सकता है। काँग्रेस एक ऐसा दल है जिसमें अनेक विचारधारा और हितों के व्यक्ति सम्मिलित हो सकत है। इसे दल के बजाय एक सार्वजनिक मंच या प्लेटफार्म कहा जा सकता है।

विचारधारा से आशय है किसी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक दर्शन में विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करना। विचारधारा में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय दलों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – दक्षिणपंथी और वामपंथी। दक्षिणपंथी दल यथास्थिति को बनाये रखने में विश्वास करते हैं। भारत में स्वतन्त्र पार्टी जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी तुलना ब्रिटिश अनुदारवादी दल से की जा सकती है। वामपंथी विचारधारा का आशय आर्थिक, सामाजिक ढाँचे में आमूल–चूल परिवर्तन चाहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं – उदार (सभी समाजवादी दल) एवं उग्र (साम्यवादी दल)। उदारवादी दल गाँधीवाद और फेक्यिनवादी सिद्धान्तों में विश्वास करते है, जबकि साम्यवादी दल क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास करते हैं। सभी प्रकार के अखिल भरतीय दलों का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है, क्योंकि उनकी सदस्तया सभी धर्मों और जातियों के लिये खुली है।

2. **क्षेत्रीय दल** – ये वे दल होते हैं जिनका प्रभाव किसी राज्य अथवा क्षेत्र की सीमा तक ही है। राज्य स्तरीय दल का दर्जा प्राप्त करने के लिये सम्बन्धित दल को लोकसभा अथवा विधानसभा में चुनाव में डाले गये कुल वैध मतों के कम से कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही राज्य विधानसभा में कम से कम दो सीटें जीतना परम आवश्यक है, अथवा विाान सभा की कुल सदस्य संख्या की कम से कम 3 प्रतिशत सीटें (इनमें से जो भी अधिक हों) जीतना आवश्यक होगा। 14 मई 2006 को संशोधित नियमों के अनुसार राज्य स्तरीय मान्यता प्राप्त प्रदान करने के लिये वर्तमान शर्तों के अतिरिक्त दो वैकल्पिक शर्तें और जोड़ी गयी हैं।

1. लोकसभा के आम चुनाव में पार्टी प्रत्येक 25 लोकसभा सीटों में से कम से कम एक सीट होनी चाहिये।

2. लोकसभा के आम चुनाव में सम्बन्धित राज्य में पार्टी उम्मीदवारों को पड़े वैध मतों में से न्यूनतम 6 प्रतिशत प्राप्त हो। साथ ही पार्टी को कम से कम एक सीट अवश्य प्राप्त हो, इसमें शिवसेना, तेलगूदेशम, डी.एम.के., ए.डी.एम.के., असमगण परषिद, सिक्कीम संग्राम परिषद, समाजवादी पार्टी, तमिल मनीला काँग्रेस, राष्ट्रीय लोकदल, तृणमूल काँग्रेस, हरियाण विकास पार्टी, इण्डियन लोकदल आदि।

3. **स्थानीय किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल** – भारत में कुल दल विशेष जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित रहते हैं। केरल की मुस्लिम लीग, महाराष्ट्र की शिवसेना, महाराष्ट्र की नव निर्माण सेना, पंजाब का अकाली दल, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, आदि ऐसे ही दल हैं।

4. **तदर्थ दल** – भारत में ऐसे भी दल है जो समय–समय पर बनते–बिगड़ते रहते है। इन्हें छोटे–छोटे गुट कहा जा सकता है। ऐसे दलों में बड़े दलों में से टूटकर नये दल बनते रहते हैं। ये दल कैसे टूटते व कब बनते और कैसे बनते है इसका पता लगाना बहुत कठिन है। ये विभिन्न दलों में से असंतुष्ट नेताओं द्वारा निर्मित गुट है। उ0प्र0 में इनकी संख्या लगभग 28 है।

उ0 प्र0 में अब तक उद्गामित दल एवं उनका इतिहास

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस – भारत के साथ–साथ उ0प्र0 के राजनीतिक रंगमंच पर एक प्रभावशाली दल के रूप में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस है। इसका उद्गम 27 दिसम्बर 1885 ई0 ए.ओ. ह्यूम के प्रयासों से मुम्बई में हुआ था। इसकी स्थापना का श्रेय डब्ल्यू.सी. बनर्जी, सुरेन्द्र नाम बनर्जी तथा ए.ओ. ह्यूम के संयुक्त प्रयासों से हुई थी। इसी कारण इण्डियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना का समस्त श्रेय ए.ओ. ह्यूम को देना या काँग्रेस की स्थापना एक आकस्मिक घटना थी। यह ठीक नहीं होगा। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना क्यों की गयी थी। इस पर राजनीतिक विचारकों में मतभेद है। जहाँ एक तरफ जर्मन का विचार है कि काँग्रेस ऐसी राजनीतिक संस्था हो जिसमें सरकार जनता की वास्तविक भावनायें जान सके जिससे प्रशासन और शासन को किसी विस्फोट से बचाया जा सके। वही लाला लाजपत राय का विचार है कि यह संस्था इसलिये बनी जिससे वह एक अंग्रेजी शासन की रक्षा हेतु अभय कपाट के रूप में कार्य कर सके। इसका उद्देश्य साम्राज्य की रक्षा करना है, नहीं बल्कि उसको सुदृढ़ करना था।

राजनीतिक शिकायतों को दूर करना तो एक गोणोत्पादक था और गौण महत्व की बात थी। इस संदर्भ में ह्यूम का विचार था कि बिखरे हुये व्यक्ति कितने ही बुद्धिमान तथा अच्छे उद्देश्य क्यों न रखते हों जब तक वो अकेले हैं तब तक उनकी कोई शक्ति नहीं होती है। आज के युग में आवश्यकता है संघ की, संगठन की और कार्यवाही के लिये एक निश्चित और स्पष्ट प्रणाली की। इसी संदर्भ में ह्यूम ने भारतीय लोगों के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक पुर्नजन्म के लिये पचास सवयं सेवकों की माँगें की। इन्होंने इण्डियन नेशनल काँग्रेस के लिये सरकारी तथा गैर–सरकारी व्यक्तियों की सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त कर ली। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह संस्था इग्लैण्ड तथा भारत के सम्मिलित मस्तिष्क की उपज थी। इस प्रकार यह भी स्पष्ट है इस अखिल भारतीय संस्था को निश्चित एवं प्रत्यक्ष रूप देने का श्रेय ए.ओ. ह्यूम को जाता है। इस संस्था के संदर्भ में रजनी कोठारी ने लिखा है – "इसका संगठन चुनाव लड़ने के उद्देश्य से नहीं विदेशी शासन के विरोध के लिये हुआ था और इसे जनता में फैलाने के साथ–साथ विभिन्न विचारधाराओं तथा हितों को भी इसमें लाने का प्रयत्न किया गया।भारत में दल प्रणाली का उद्भव काँग्रेस की स्थापना से माना जा सकता है। वह भारत की नहीं बल्कि समस्त अफ्रीका व एशिया के विकासशील देशों की सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी है। लेकिन प्रारम्भ में काँग्रेस पार्टी राजनीतिक दल नहीं था। बाद में प्रायः यह माना जाता है कि भारत में समस्त पार्टियों का उद्भव इसी पार्टी से हुआ। दि0 1885 में इसका निर्माण एक दबाव गुट के रूप में किया गया था, बाद में काँग्रेस ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और इसी के नेतृत्व में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। काँग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रश्न का उत्तर 15 सितम्बर 1931 में ही महात्मा गाँधी ने लन्दन में "फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी" में भाषण के दौरान दिया था। काँग्रेस मूलतः भारत में साढ़े छः लाख गाँव

में बसे मूक, अधभूखे करोड़ो लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। चाहे वे तथाकथित ब्रिटिश भारत या भारतीय भारत के हो। कॉंगेस यह मनती है कि उन्हीं के हितों की सुरक्षा की जानी चाहिये जो इन करोड़ो मूक लोगों के हितों का साधन करते हैं।

आजादी के पहले का कॉंग्रेस का रूप

1. **उदारवारी कॉंग्रेस (1885 से 1905)** – कॉंग्रेस स्थापना के समय ब्रिटिश शासन प्रणाली के प्रति राजभक्त थी, अँग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध भारत के हित में समझना क्रमिक सुधार में विश्वास, संवैधानिक साधनों में विश्वास, राजनीतिक स्वशासन की प्राप्ति आदि कॉंग्रेस के प्रारम्भिक कॉंग्रेस के उद्देश्य थे।

कॉंग्रेस के प्रारम्भिक नेता थे ए.ओ. ह्यूम (भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के पिता) दादाभाई नैरोजी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि तथा अनेक मध्यमवर्गीय व बुद्धिजीवी जिसमें विश्वविद्यालयों के शिक्षक, वकील, पत्रकार आदि शामिल थे।

2. **उग्रवादी कॉंग्रेस (1906 – 1919)** – उपर्युक्त कार्यवाहियों से अंग्रेजी शासन पद्धति में कोई सुधार नहीं आया और उनकी कोरी घोषणा की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। तत्कालीन परिस्थितियाँ – धार्मिक पुनरुत्थान (विवेकानन्द एवं दयानन्द सरस्वती का प्रभाव) बढ़ने लगा। जिससे कॉंग्रेस कुछ कार्यक्रमों में भी परिवर्तन आने लगा। प्राकृतिक प्रकोप और उनसे उत्पन्न समस्याओं के प्रति शासन की अविवेक पूर्णनीति, जातीय कटुता और अंग्रेजी का अंहकार मुक्त व्यवहार, आर्थिक असंतोष, उपनिवेशों में भारतीय के साथ दुर्व्यवहार, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव (छोटे क्षेत्र द्वारा इटली को पराजित करना, मिश्र, फारस तथा टर्की में स्वतन्त्रता आन्दोलन, रूस में जार के तानाशाही शासन के विरूद्ध आन्दोलन आयरलैण्ड में स्वशासन के लिये संघर्ष) लार्ड कर्जन के पूर्वगामी शासकों की अदूरदर्शिता, लार्ड कर्जन का प्रतिगामी, शासन – केन्द्रीयकरण की नीति, विश्वविद्यालय का सरकारीकरण, सैनिक व्यय में बढ़ोत्तरी, तत्कालीन शान शौकत, प्रशासनिक गुप्तता अधिनियम भारत के प्रति अविश्वास और अहंकार मुक्त दृष्टिकोण बंगाल का विभाजन तथा उदारवादियों की कर्म पद्धति के प्रति असंतोष के कारण उग्रवादी स्वरूप सामने आया जिसका प्रतिनिधित्व बाल गंगाधार तिलक, शेरे पंजाब, लाला लाजपत राय और विपिन चन्द्र पाल ने किया। उन्होंने जनता में एक नई चेतना का उदय किया तथा एक नया अस्त 'स्वदेशी और अंग्रेजों के बहिष्कार की नीति का प्रतिपादन किया जिससे भारत में जनजागरण का उदय हुआ।

गाँधी युग (1919 से 1947 तक)

दक्षिण अफ्रीका से 1915 में लौटने के बाद महात्मा गाँधी जी ने लगभग दो वर्ष भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का व्यवहारिक अध्ययन किया। अध्ययन के उपरान्त उन्होंने पाया कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के कारण देश की जनता विशेष रूप से परेशान है। पुराने राजनेताओं के स्थान पर गाँधी जी ने कॉंग्रेस की बागडोर संभाली और छोटे–छोटे आन्दोलनों के पश्चात उन्होंने एक जनआन्दोलन का रूप धारण किया और विभिन्न धर्म, जाति और आदर्शों के मानने वाले लोग एक सामान्य उद्देश्य अर्थात स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये कॉंग्रेस में सम्मिलित हुये। भारतीय राजनीतिक चिन्तक रजनी कोठारी ने लिखा है – "इसका संगठन चुनाव लड़ने के उद्देश्य से नहीं विदेशी शासन के विरोध के लिये हुआ था और उसे जनता में फैलाने के साथ–साथ विभिन्न विचारधाराओं तथा हितों की भी इसमें लाने का प्रयास किया गया। संक्षेप में स्वतन्त्रता पूर्व के काल में कॉंग्रेस का विकास तीन चरणों से होकर गुजरा जैसे –

1. कॉंग्रेस भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये एक प्लेटफार्म बनी।

2. कॉंग्रेस एक ऐसा मंच बनी जहाँ से परिवर्तन की ज्वाला निकली।

3. कॉंग्रेस एक साम्राज्यवादी आन्दोलन के रूप में सम्पूर्ण भारत में फैल गई।

इस प्रकार हम पाते हैं कि कॉंग्रेस पार्टी के हर विचारधारा के लोग यथा दक्षिणपंथी, वामपंथी और मध्यममार्गी तीनों प्रकार की विचारधाराओं वाले लोग शामिल थे और कॉंग्रेस का जो संगठन विकसित हुआ, वह विभिन्न धर्मों, हितों और सिद्धान्तों का सम्मिश्रण था। इसलिए मामा एन0डी0 ने कहा कि कॉंगेस का उदय एक छात्र संगठन के समान हुआ है, जिसका अर्थ यह है कि कॉंग्रेस से सभी वर्गों, जातियों, समुदायों, हितों तथा सिद्धान्तों को मानने वालों को अपने में समा लिया। कॉंग्रेस की इसी विशेषता को दृष्टिगत रखते हुये। डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने इसकी तुलना एक धर्मशाला से की थी और कहा था कि "कॉंग्रेस एक धर्मशाल के समान है, जो मूर्खों, धूर्तों, मित्र, शत्रु सम्प्रदायों और धर्म निरपेक्ष, सुधारवादी तथा कट्टरपंथी, पूँजीपति और पूँजीवाद विरोधी सभी लोगों के लिये खुली हुई है।" इस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व करते–करते कॉंग्रेस पार्टी की मुख्य तौर पर तीन विशेषताओं उभरकर सामने आयी है।

1. कॉंग्रेस ने एक शीर्ष संगठन स्थापित किया जिसके पास राष्ट्रीय लक्ष्य एवं नेतृत्व या जिसने भारत में लोकतान्त्रिक वैधानिकता प्राप्त की।

2. एक मध्यममार्गी विचारधारा को हासिल कर जिसमें धर्म निरपेक्ष, समाजवादी, लोकतान्त्रिक एवं मिश्रित अर्थ व्यवस्था जैसी संकल्पनाओं का समावेश था।

3. एक बहुलवादी जनसमर्थन की प्राप्ति जिसमें समाज के विभिन्न अभिरूचियों समूहों, वर्गों, क्षेत्रों प्रथाओं से आने वाले लोग थे।

जैस कि उपर्युक्त वर्णन से स्पश्ट है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के तौर तीरकों को एक नये रूप में ढलकर सामने आयी ताकि ये मतभेद हानिकारक थे क्यों इन मतदाताओं के रहते कॉंग्रस को एक राजीनतिक दल के रूप में उभरकर राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिये कार्य करना कठिन था। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कॉंग्रेस के भविष्य को लेकर कॉंग्रेस के अन्दर ही दो मत थे। जहाँ महात्मा गाँधी जैसे कुछ लोगों का मानना था कि चूँकि कॉंग्रेस ने अपने लक्ष्य (स्वतन्त्रता प्राप्ति) को प्राप्त कर लिया है। अतः उसे भंग कर देना चाहिये। कॉंग्रेस नेताओं ने गाँधीजी के विचार को नितान्त व्यवहारिक माना। उनका मानना था कि कॉंग्रेस को नवीन नीतियों को अपना कर अपने आप को नये सिरे से पुर्नगठित करना चाहिये। जवाहर लाल नेहरू का स्पष्ट मत था कि बिना कॉंग्रेस के (जो शक्ति ब्रिटिश हुकूमत से प्राप्त हुई है) एक सम्प्रभु राष्ट्र के राजनीतिक एकीकरण तथा उसमें संसदीय

www.ignited.in

लोकतन्त्र की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

इस विचारधारा के परिणाम स्वरूप काँग्रेस भंग नहीं हुई और देश की शासन सत्ता काँग्रेस के हाथों में पहुँच गयी। इस प्रकार 1947 के बाद भारतीय काँग्रेस ने वास्तविक अर्थों में एक राजनीतिक दल का रूप धारण कर लिया और उसने अपनी एक राष्ट्रीय छवि बना ली थी। इस प्रक्रिया में उसने अखिल भारतीय स्तर का अपना एक संगठन हासिल कर लिया था और भारत की एक मजबूत सत्ता, संरचना के तौर पर उभर कर सामने आयी जिसका वृहद लाभ लोकतांत्रिक चुनावों में देखा जा सकता है। नार्मन डी पामर ने काँग्रेस पार्टी को राष्ट्रीय आन्दोलन से विकसित राजनीतिक दल कहा है।

संक्षेप में कह सकते है कि 1885 से 1907 तक काँग्रेस का लक्ष्य विदेशी शासन पर दबाव डालना था। सन् 1907 से 1919 तक काँग्रेस उदारवादियों और उग्रवादियों में विभक्त रहीं। सन् 1920 से 1947 तक काँग्रेस को नेतृत्व महात्मा गाँधी ने किया और देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद काँग्रेस राजनीतिक दल के रूप में परिवर्तित हो गयी तथा केन्द्र और राज्य के निर्वाचनों में प्रचण्ड बहुमत प्राप्त कर सत्ता का उपयोग करने लगी।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट कर देते है कि स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई काँग्रेस के तले लड़ी गयी। इसी झण्डे के नीचे, समाजवादी, वामपंथी, हिन्दू महासभा और क्रान्तिकारी दल सभी खड़े थे। इसीलिये भारत के आजाद होने पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने काँग्रेस पार्टी को भंग करने और नये सिरे से पार्टियों के गठन करने का सुझाव दिया था। दुर्भाग्यवश काँग्रेसी नेताओं ने आजाद भारत में राजनीतिक फायदा लेना शुरू कर दिया और उन्होंने महात्मा गाँधी के सुझाव को नहीं माना। थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ काँग्रेसी झण्डे को राष्ट्रीय झण्डा बना लिया गया। इससे काँग्रेस न सिर्फ राष्ट्रीय आन्दोलन की एकमात्र दावेदार बन गई, बल्कि भारत की अशिक्षित व अर्द्धशिक्षित जनता में राष्ट्र और सरकार को एक ही बात समझने की भ्रांति पैदा हो गई। उदाहरण के लिए लोग समझने लगे कि काँग्रेस ही राष्ट्र की भलाई के लिए चिंतित है और उसे ही राज्य करने का हक है क्योंकि आजादी की लड़ाई उसी ने लड़ी थी और बाकी सब पार्टियाँ उसका वैध अधिकार छीनने में लगी है।

1952 में लोकसभा के प्रथम आम चुनाव हुए उ0प्र0 के साथ–साथ काँग्रेस को इसका लाभ मिला। उ0प्र0 विधानसभा के चुनावों को जीतकर पं0 गोविन्द बल्लभपंत प्रथम काँग्रेसी मुख्यमंत्री बने। आगे चलकर 1957 तथा 1962 के विधानसभा चुनाव भी काँग्रेस ने पूर्ण बहुमत के साथ जीते। 1967 तक काँग्रेस पार्टी ने उ0प्र0 को डॉ0 सम्पूर्णानन्द, चन्द्रभान गुप्त तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी के रूप में चार मुख्यमंत्री दिये। काँग्रेस में यह शुरू से परम्परा रही है कि जिस व्यक्ति को 'हाई कमान' का समर्थन प्राप्त होती है वही राज्य में मुख्यमंत्री होता है और ऐसा ही उ0प्र0 में हुआ। राज्य के विधायकों द्वारा अपने नेता (मुख्यमंत्री) का चयन तो महज औपचारिका होती है। इसीलिए किसी एक विधानसभा के कार्यकाल में एक से अधिक मुख्यमंत्री देखने को मिल जाते हैं। इस प्रकार 1952 से 1967 तक काँग्रेस की पकड़ उ0प्र0 पर बन रही है। 1967 में पहली बार काँग्रेस को चुनौती मिली। इस चुनाव में काँग्रेस की सीटें घटकर 199 ही रह गई जो कि पूर्व बहुमत से कम थी। यद्यपि काँग्रेस ने जोड़–तोड़कर चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में सरकार बना ली लेकिन यह सरकार एक महीने बाद उस समय गिर गई। चौधरी चरण सिंह समाजवादियों तथा जनसंघवादियों के साथ मिलकर 'संयुक्त विधायक दल' नाम से सरकार बना ली। 1969 के मध्यावधि विधानसभा चुनावों में काँग्रेस को हार का सामना करना पड़ा और विपक्षी चौधरी चरण सिंह ने सरकार बनाई। इसी दौरान काँग्रेस में विभाजन भी हो गया। उ0प्र0 में इंदिरा गाँधी को गुप्त काँग्रेस (आर) से जाना गया जिसका नेतृत्व पं0 कमलापति त्रिपाठी ने किया तथा श्री निजलिंग्पा का गुट काँग्रेस (ओ) के नाम से जाना गया जिसका नेतृत्व चन्द्रभान गुप्त ने किया। 1971 के लोकसभा चुनावों में केन्द्र में काँग्रेस (इंदिरा गुट) सत्ता में आ गया और काँग्रेस ने चौधरी चरण सिंह की सरकार को बर्खास्त कर दिया। थोड़े दिन के राष्ट्रपति शासन तथा विपक्षी गठबन्धन के मुख्यमंत्री त्रिभुवन नारायण सिंह के बाद जोड़–तोड़ कर काँग्रेस ने अप्रैल 1971 को पं0 कमलापति त्रिपाठी को मुख्यमंत्री बनाया गया जो 12 जून 1973 तक इस पद पर रहे। इसके बाद प्रदेश में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गई कि लगभग 6 महीने राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा। इसके बाद 8 नवम्बर 1913 को काँग्रेस ने हेमवती नंदन बहुगुणा को मुख्यमंत्री बनाया जो 30 नवम्बर 1975 तक मुख्यमंत्री रहे। इसी बीच 1974 के विधानसभा चुनाव में काँग्रेस हार गई थी। लेकिन विपक्षी दलों की बढ़ती शक्ति को देखकर देश में आपातकाल लगा दिया गया और उ0प्र0 भी राष्ट्रपति शासन के अधीन हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1967 से 1971 तक लगातार काँग्रेस की शक्ति उ0प्र0 में कमजोर होने लगी। इसी का परिणाम था कि श्रीमती इंदिरा गाँधी को आपातकाल लागू करना पड़ा। आपातकाल समाप्त होने के बाद 1977 के विधानसभा चुनाव में उ0प्र0 में काँग्रेस का पूरी तरह सफाया हो गया। यह उ0प्र0 में किसी विपक्षी दल की अब तक की सबसे बड़ी जीत थी। लेकिन शीघ्र ही जनता पार्टी अपने अन्तर्विरोध का शिकार हो गई जिसका लाभ 1980 के विधानसभा चुनावों में काँग्रेस को पूर्ण बहुमत के रूप में मिला और इस कार्यकाल में विश्वनाथ प्रताप सिंह व श्रीपति मिश्र उ0प्र0 के काँग्रेसी मुख्यमंत्री बने।

1980 के चुनाव में विरोधी दलों पर सरकार न चला पाने का आरोप लगा था। इसी कारण वो चुनाव हार गये। 1984 के उ0प्र0 विधानसभा चुनाव में काँग्रेस के खिलाफ माहौल था, लेकिन दुर्भाग्यवश **31 अक्टूबर 1984** को इंदिरा गाँधी की हत्या कर दी गयी। इंदिरा गाँधी की हत्या से सहानुभूति की लहर काँग्रेस के पक्ष में होने के कारण काँग्रेस चुनाव में विजयी रही। मुख्यमंत्री की कुर्सी एन0डी0 तिवारी को मिली उसके बाद काँग्रेस के बीर बहादुर सिंह मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा के इसी कार्यकाल में अंततः पुनः नारायणदत्त तिवारी को मुख्यमंत्री बनाया गया जो 5 दिसम्बर 1989 तक अपने पद पर बने रहे। इसके बाद पिछड़े, दलितों में आई स्थायी राजनीतिक पतन तथा भारतीय जनता पार्टी के उभार से काँग्रेस का वोट बैंक खिसकना शुरू हो गया। इसी कारण काँग्रेस 1989, 1991, 1993, 1997, 2002 तथा 2007 व **2012 के विधानसभा** चुनाव हार गई और यहाँ तक कि मुख्य विरोधी दल भी नहीं बन पायी। आज उ0प्र0 में काँग्रेस अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये संघर्ष कर रही है और वह अपना पुराना वोट बैंक प्राप्त करना चाहती है। उल्लेखनीय यह भी है कि काँग्रेस उ0प्र0 विधानसभा चुनावों में अवश्य पराजित हुई है। 1991 से 1995 तक नरसिम्हा राव के नेतृत्व में केन्द्र में सरकार

www.ignited.in

चलाने में सफल हुई। 2004 के लोकसभा चुनाव में एक बार सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और यू.पी.ए. गठबन्धन बनाकर डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाने में कामयाब रही है। इसी तरह 2009 के आम लोकसभा चुनाव में पुनः कॉंग्रेस पार्टी सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी और पुनः डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाने में सफल रही है। लेकिन इस दौरान क्षेत्रीय दल भी अपना अस्तित्व बचाने में सफल रहे हैं।

कॉंग्रेस के राजनीतिक कार्यक्रम तथा व्यवहार – लोकतन्त्र में किसी भी दल का अस्तित्व संगठन पर निर्भर करता है। कॉंग्रेस की सदस्यता दो प्रकार की है। प्रारम्भिक और सक्रिय। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष हो कॉंग्रेस का सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिये दल के उद्देश्यों में लिखित विश्वास प्रकट करना पड़ता है। प्रारम्भिक और सक्रिय सदस्यों के चन्दे तथा अधिकारों में अन्तर है। संगठन की दृष्टि से ग्राम मोहल्ला कॉंग्रेस समिति संगठन की आधारभूत इकाई है। ग्राम और मोहल्ला कॉंग्रेस समितियों के ऊपर तहसील समितियाँ होती हैं, इसके ऊपर जिला समितियाँ और प्रान्तीय समितियाँ होती हैं। संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण देश 25 प्रदेशों में विभक्त है। प्रान्तीय कॉंग्रेस समितियों के ऊपर कॉंग्रेस का राष्ट्रीय या अखिल भारतीय संगठन होता है, जिसमें एक अध्यक्ष एवं कार्यकारिणी समिति एवं अखिल भारतीय संगठन होता है, जिसमें एक अध्यक्ष एवं कार्यकारिणी समिति एवं अखिल भारतीय कॉंग्रेस समिति होती है जो कॉंग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेशन से मिलकर बनती है। कॉंग्रेस के विधान में एक नये संशोधन द्वारा अध्यक्ष की अवधि तीन वर्ष कर दी है। कॉंग्रेस कार्यकारिणी समिति के इस सदस्य अखिल भारतीय समिति द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं और उक्त सदस्य कॉंग्रेस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। कार्यकारिणी समिति में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं – निर्वाचित, पदेन और सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि। कॉंग्रेस के संसदीय कार्यों के नियन्त्रण और समन्वय के लिये कॉंग्रेस कार्यकारिणी समिति एक संसदीय बोर्ड की स्थापना करती है, जिसमें कॉंग्रेस अध्यक्ष और पाँच अन्य सदस्य होते हैं।

कॉंग्रेस संगठन के परिपेक्ष्य में हाईकमान शब्द अत्यधिक प्रचलित हो गया है। (हाईकमान = कॉंग्रेस दल का सर्वोच्च निर्णय और आदेश देने वाली एक लघु संस्था का गुट) इसमें वे ही व्यक्ति सम्मिलित होते हैं, जो दल में सर्वोच्च स्थान रखते हैं। आजादी के पूर्व महात्मा गाँधी के हाथों में यह संस्था थी और आज यह श्रीमती सोनिया गाँधी के रूप में केन्द्रित हैं। समय–समय पर इस संस्था में इस हाईकमान को लेकर व्याख्या होती रहती है कि यह संस्था वैयक्तिक है या सामूहिक/सामान्यतः इस संगठन में हाईकमान वैयक्तिक ही रहा है।

कॉंग्रेस का उद्देश्य उसके संविधान की प्रथम धारा में स्पष्ट किया गया है – "भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का उद्देश्य भारत के लोगों की भलाई और उनका सर्वांगीण विकास करना है। समय और परिस्थितियों के अनुरूप कॉंग्रेस के संगठन में परिवर्तन होता रहा है, वैयक्तिक तत्वों के परिणाम स्वरूप इस संगठन में विभाजन भी होता रहा है। आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों की समानता हो तथा जिसका लक्ष्य विश्व शान्ति और विश्व बन्धुत्व हो।"

जनसंघ (21 अक्टूबर 1951)

भारतीय जनसंघ की स्थापना डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 21 अक्टूबर 1951 को की गई थी। उल्लेखनीय है भारतीय जनसंघ की स्थापना का प्रेरणा स्रोत (आर.एस.एस.) को माना जाता है, जिसकी स्थापना डॉ0 केशवराम बलिराम हेडगेवार द्वारा नागपुर में की गई थी। जनसंघ के चार सिद्धान्त थे – एक देश, एक राष्ट्र, एक संस्कृति और विधि का शासन। दीनदयाल उपाध्याय जो कि आर.एस.एस. के प्रमुख संगठनकर्त्ताओं में से एक थे ने जनसंघ की उ0प्र0 में स्थापना में बहुत सहयोग दिया था। उन्होंने 1937 में कानुपर के सनातन धर्म कॉलेज में बी0ए0 के लिए प्रवेश लिया तभी आपने आर.एस.एस. को स्वीकार किया। 1951–52 के चुनाव में श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा कि अगर कॉंग्रेस पार्टी का शासन इसी तरह चलता रहा तो यह देश को तानाशाही की तरफ ले जायेगा। जनसंघ ने शुरू से ही कॉंग्रेस का विकल्प बनने की कोशिश की पर वह बन न सका। 1954 में जम्मू कश्मीर में श्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी की हत्या कर दी गई। उसके बाद जनसंघ में उत्तराधिकार का संकट आ गया। दिल्ली के सनातन धर्म परिवार से आये मौलीचन्द्र शर्मा को जनसंघ का अध्यक्ष बनाया गया।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ की नीतियों के प्रचार प्रसार हेतु कुछ पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन लखनऊ से शुरू किया। इसी कड़ी में राष्ट्रधर्म (मासिक), पांजजन्य (साप्ताहिक) तथा स्वदेश (दैनिक) प्रमुख हैं। अनुपम तथ्य यह है कि जनसंघ उ0प्र0 में बहुत सफल नहीं हुई। 1967 के आम विधानसभा चुनाव में उ0प्र0 में 98 सीटें जीती थीं, 1969 में 49 सीटें। जनसंघ ने कहा – 1967 में अगर संयुक्त विधायक दल से गठबंधन न किया होता तो 1969 के मध्यावधि चुनाव में जनसंघ को इतना नुकसान न होता। बलराज मधोक किसी भी गठबंधन में शामिल होने के विरूद्ध थे। 1966–67 में जब वे जनसंघ के अध्यक्ष बने तो उन्होंने किसी भी गैर–कॉंग्रेसी गठबंधन में शामिल होने से इंकार कर दिया और कहा कि इससे पार्टी की छवि धूमिल होती है और उसकी कोई स्वतन्त्र पहचान नहीं बन पा रही है। उ0प्र0 में बलराज मधोक ने कॉंग्रेस से संतुष्ट रूढ़िवादी व परम्परागत भारतीयों पर ध्यान केन्द्रित किया। उ0प्र0 भाजपा का पूववर्ती संगठन, जनसंघ था जो कथित रूप से आर.एस.एस. से अलग होते हुए आर.एस.एस. से प्रभावित था। इसने 1967 का उ0प्र0 विधानसभा का चुनाव 'गो हत्या' तथा गंगाजल की पवित्रता जैसे मुद्दों पर लड़ा जिसमें उसे 98 सीटें मिली। यह कॉंग्रेस के बाद किसी पार्टी की सबसे बड़ी जीत थी। इसने शुरू से ही हिन्दू राष्ट्रवाद से लाभ लेने की कोशिश की। जनसंघ की विचारधारा अन्य धर्मों व सम्प्रदायों के प्रति अतिवादी थी जो एक तहर से उनके प्रति असहनशील थी। इस दल ने नेहरू की धर्मनिरपेक्षता एवं सहकारिता का हमेशा से ही विरोध किया। 1967 से 1970 के बीच जब देश में साम्प्रदायिक दंगों में बढ़ोत्तरी हुई तो इंदिरा गाँधी ने कड़े कदम उठाने का फैसला किया। उन्होंने दिल्ली की आर.एस.एस. शाखाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उन्होंने कहा कि कोई भी संघ लाठी, डण्डा लेकर या निहत्था होकर भी अपना भौतिक अभ्यास किसी सार्वजनिक स्थल पर नहीं करेगा। आर.एस.एस. तथा जनसंघ ने इसे हिन्दुओं पर प्रतिबन्ध बताया और प्रतिक्रिया स्वरूप एक बड़ा हस्ताक्षर अभियान चलाया। इस प्रकार की गतिविधियाँ करके जनसंघ अपना जनाधार बढ़ाने की कोशिश करता रहा। जनसंघ में हमेशा इस बात की टकराहट रही है कि पार्टी शुद्ध कट्टर नीतियाँ अपनाये या फिर लोकप्रिय कदम उठाये। अटल बिहारी बाजपेयी जैसे नेता लोकप्रिय नीतियों का समर्थन कर रहे हैं। आगे चलकर 1974 के विधानसभा चुनावों में भी विशेष सफलता हासिल न कर सकी। 1971 में यह जनता पार्टी में विलय हेकर उसका घटक बन गई। 1980 में इसका संशोधन भाजपा के रूप में सामने आया।

www.ignited.in

भारतीय जनता पार्टी (5 अप्रैल 1980)

जनसंघ का नया अवतार भारतीय जनता पार्टी 1980 में पूर्व जनसंघियों ने एक नई पार्टी बनाई जिसे 'भाजपा' नाम दिया गया। इन्होंने भाजपा को जनता पार्टी का उत्तराधिकारी तक कहा। भाजपा ने प्रारम्भ में अपना सम्बन्ध 'जे0पी0 आन्दोलन' से बताया ताकि उसका जनाधार बढ़ सके। उसका अपने आपको जनता पार्टी का उत्तराधिकारी बताने का एक कारण यह भी था कि कुछ संस्थापक सदस्य जनता पार्टी से आये थे जिसमें प्रमुख है श्री राम जेठमलानी जो बम्बई के एक प्रसिद्ध वकील है और उन्होंने 1977 में प्रथम बार बम्बई में लोकसभा का चुनाव जीता था। शांतिभूषण, मोरारजी देसाई सरकार में न्यायमंत्री थे, तथा सिकंदर बख्त जो जनत पार्टी में मंत्री थे इससे पार्टी की मुख्य विचार धारा जरूर सरल हुई थी।

श्री लालकृष्ण आडवाणी एवं श्री मुरली मनोहर जोशी को पार्टी के संविधान लिखने की जिम्मेदारी सौंपी गई। भाजपा ने जनता पार्टी के कार्यक्रम और नीतियाँ को भी अपनाने की कोशिश की थी। अटल बिहारी ने इसमें बहुत सहयोग एवं समर्थन किया। कुल मिलाकर प्रारम्भ में भाजपा ने अपने आपको आर.एस.एस. से भिन्न बनाने का प्रयास किया। भाजपा अपना विचारधारा के माध्यम से गाँधीवादी समाजवादी लाने का प्रयास करती रही और इसे प्राप्त करने के लिए महात्मा गाँधी, दीनदयाल उपाध्याय तथा जयप्रकाश नारायण से प्रेरणा प्राप्त करती रही। विश्लेषकों का मानना है कि यह भाजपा की दोहरी राजनीति थी। एक ओर वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के महात्मा गाँधी के हत्यारों के साथ जुड़े रहने के आरोप से मुक्त होना चाहती थी, वही दूसरी ओर वह अपनी छवि एक समाजवादी व साम्प्रदायिक न होकर सच्चे राष्ट्रवादी दल का प्रस्तुत करना चाहती थी।

भाजपा ने उपर्युक्त नीतियाँ 1980 के केन्द्र तथा राज्य विधान सभाओं के चुनाव को मद्देनजर रखते हुए अपनाई थी। इसके साथ उसे अपनी जड़ों (आर.एस.एस. आदि) से अलग होने का भी खतरा महसूस हो रहा था। उसे डर लग रहा था कि इस प्रकार की लोकप्रिय नीतियाँ अपनाकर कहीं वह अपनी मातृसंस्था आर. एस.एस. को नाराज न कर ले। इस दुविधा का परिणाम यह हुआ कि भाजपा 1980 के उ0प्र0 विधान सभा में चुनाव हार गई। इसके तुरन्त बाद पार्टी की जननीतियों पर प्रश्न चिन्ह लगना शुरू हो गया। आर.एस.एस. ने यह कहना **शुरू कर दिया** कि यदि पार्टी अपनी मूल हिंदुत्ववादी या राष्ट्रवादी नीतियों से अलग न हुई होती तो उसे हार का सामना न करना पड़ता।

इसके बाद 1981–82 से भाजपना ने धर्म को राजनीति में लाने की धीरे–धीरे कोशिशें तेज की। इसके साथ–साथ भाजपना के मातृ संगठनों आर.एस.एस. तथा विश्व हिन्दू परिषद ने गंगाजल का पवित्रता तथा गोहत्या पर प्रतिबन्ध जैसे धार्मिक मुद्दे उठाने आरम्भ किये। इसी क्रम में 1983 में आर.एस.एस. ने अपने आंदोलनों को तेज करने, शासकों से हस्तक्षेप का अनुरोध करने, बजरंग दल की स्थापना तथा विवादित ढाँचे का ताले खोलने जैसी आवाजें उठाई। लेकिन इतना होने के बाद भी भाजपा जनता का धुव्रीकरन नहीं कर पाई।

इसी कारण भाजपा 1984 के लोकसभा चुनावों में मात्र दो स्थान प्राप्त कर सकी। इसी तरह उ0प्र0 विधानसभा चुनावों में भी स्थिति अच्छी नहीं रही। हालांकि इस समय काँग्रेस की सहानुभूति लहर भी थी। ए.एस. नारंग ने अपनी पुस्तक "भारतीय शासन एवं राजनीति" में इसका उल्लेख किया है कि उस समय तक उ0प्र0, बिहार, महाराष्ट्र जैसे घनी आबादी वाले राज्यों में इसका प्रदर्शन सोचनीय था।

इस प्रकार बी.जे.पी. का राजनीतिक दल के रूप में उदय सामूहिक विचारों की उत्पत्ति का परिणाम है। इस दल में कई सहयोगी दलों का योगदान है जिनको संघ परिवार की संज्ञा दी जाती है। संघ परिवार के सहयोगी दलों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, स्वदेशी जागरण मंच, विद्यार्थी परिषद प्रमुख हैं। इन सभी में सबसे अधिक चर्चित दल के रूप में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ है जो संघ परिवार को दिशा निर्देशित करता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना नागपुर में डॉ0 हेडगेवार ने अंग्रेजी शासन के दौरान की। इस दल की सदस्य संख्या का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है। इसके सक्रिय सदस्य भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर में दल के विचारों को प्रचारित करने में संलग्न है।

इस दल के सामान्य सदस्यों को 'स्वयंसेवक' कहा। इस संगठन के सिद्धान्त भी इसके नाम के अनुरूप है क्योंकि इसके स्वयं सेवकों में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भर दी जाती है। आर.एस.एस. अपने नाम से कोई चुनाव नहीं लड़ता है, बल्कि भारतीय जनता पार्टी को सहयोग करता रहा है। 5 अप्रैल 1980 बी.जे.पी. के जन्म के बाद बी.जे.पी. ने जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति तथा गाँधीवादी अर्थ दृष्टि को अपना आदर्श बनाया और 6 मई 1980 को पाँच सूत्रीय आधार वक्तव्य को दल का आदर्शपरक नीति माना। भाजपा की निष्ठायें है – राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय समन्वय, लोकतन्त्र, प्रभावकारी धर्म निरपेक्षता, गाँधीवादी, समाजवादी और सिद्धान्तों पर आधारित साफ सुथरी राजनीति भारतीय जनता पार्टी के प्रारम्भ में यह महसूस किया गया कि जनसंघ की परम्परागत नीतियों को अपनाया जाये या प्रगतिशील व्यवहार को धारण किया जाये। इस संदर्भ में प्रथम सत्र 1981–85 के काल में गाँधीवादी समाजवाद का प्रगतिशील जामा पहना लेकि 1983–85 के दौरान राजनीति में यह अनुभव किया जाने लगा कि जनसंघ के परम्परागत समर्थकों का एक भाग भाजपना का समर्थन नहीं कर रहा है। अतः इस दल में नीति और संगठन पर पुनर्विचार कर सन् 1987 के प्रारम्भिक महीनों धीरे– धीरे हिन्दुत्ववाद की दिशा में आगे बढ़ने का कार्य किया। इस कारण पार्टी स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद और अन्य हिन्दू धार्मिक संगठनों के साथ पुनः जुड़ गई।

काँग्रेस पार्टी के जनाधार को भाजपा ने सन् 1987 से विशेष रूप से प्रभावित करना शुरू किया। 1988 को भाजपना ने आगरा में अपना अधिवेशन आयोजित किया, जिसमें यह तय किया गया कि भारतीय जनता पार्टी को अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखते हुये सभी राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक दलों (मार्क्सवादी पार्टी, भारतीय साम्यवादी दल और मुस्लिम लीग को छोड़कर अन्य दलों) के साथ चुनावी तालमेल को अपनाने का निश्चय किया। हिन्दूवादी पुनुरुत्थान की शुरूआत 1989 के चुनाव से शुरू हुई, जब आर.एस.एस. तथा भाजपा का संगम हो गया। अब भाजपा पूर्ण रूप से आर.एस.एस. के रूप में कार्य करने लगी। विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल आदि के सहयोग से भाजपा ने आम जनता के सहयोग से अपनी राजनीतिक पैठ बनानी शुरू की। आम हिन्दू भाजपना से प्रभवित होता रहा तथा भाजपा मंदिर बनाये जाने का आश्वासन देती रहीं। इसी बीच

www.ignited.in

मंदिर निर्माण के आंदोलन को गति प्रदान करने के लिए अक्टूबर–नवम्बर 1989 में शिला पूजन के लिए प्रत्येक शहर कस्बे, गाँव में जुलूस बनाकर पवित्र ईटों को ले जाया गया जिनसे मंदिर निर्माण होना था। इस आन्दोलन की प्रमुख विशेषता यह रही कि लाखों साधु संतों ने इसमें सक्रिय भाग लिया। 10 नवम्बर 1989 को मंदिर की बुनियाद रखी गई। इसी कड़ी में लालकृष्ण आडवाणी की रथयात्रा ने भी बी.जे.पी. के जनाधार को बढ़ाने का कार्य किया। इसी बीच सभी राजनीतिक पार्टियाँ चुप रही और उ0प्र0 की राजनीति में साम्प्रदायिक तत्वों को खुली छूट मिलती रही। इसके परिणामस्वरूप 1989 के उ0प्र0 राज्य सभा चुनावों में 7.31 प्रतिशत मतों के साथ 88 सीटें बी.जे.पी. को प्राप्त हुई जो भाजपा की अब की सबसे बड़ी राजनीतिक सफलता थी। इस संदर्भ में विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष ने कहा कि "हमने हिन्दू लहर बनाई और भाजपा ने इसका पूरा लाभ उठाया।"

बी.जे.पी. ने नवीं लोकसभा के चुनाव (नवम्बर 1989) और फरवरी 1990 में 8 राज्यों का विधानसभाओं के चुनाव उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों में जनतादल के साथ लड़े और उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। 1988 के अन्त तक बी.जे.पी. ने अपना प्रभाव शहरी मध्यम वर्ग से आगे निकलकर समाज के निचले वर्गों के साथ स्थापित कर लिया और इस प्रकार यह पार्टी 1989 के मध्य तक देहातों व सुदुर गाँवों तक पहुँची। 1989 में गठित राष्ट्रीय मोर्चे में शामिल भाजपा ने बाहर से समर्थन दिया लेकिन राम जन्मभूमि पर ही मंदिर के निर्माण और रामरथ यात्रा के प्रसंग के कारण अक्टूबर 1990 में विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार और भाजपा के बीच मतभेदों का उदय हो गया और बी.जे.पी. ने वी.पी. सिंह सरकार से समर्थन वापस ले लिया।

1991 के आते–आते मंदिर मुद्दे को पूरी तरह उभारकर भाजपा ने उ0प्र0 में पूर्ण बहुमत से श्री कल्याण सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाई। 1991 में उसे 33 प्रतिशत बातों के साथ 221 सीटें मिली थी। यह सरकार 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद ढहाने एवं जनित साम्प्रदायिक दंगों के आरोप में बर्खास्त कर दी गई। **बाबरी मस्जिद ढहने** के बाद समूचे भारत का मुस्लिम बी.जे.पी. के विरोध में आ गया। यहीं से उसे इस मुद्दे का लाभ मिलना कम हो गया और 1993 के विधानसभा चुनावों में भाजपा की सीटें 176 रह गईं। 1996 के चुनावों में भी बी.जे.पी. की स्थिति अच्छी नहीं रही और उसकी सीटें 174 ही रह गईं। लेकिन चुनाव के बाद बी.एस.पी. से गठबन्धन का वह सत्ता में आ गई। समझौते के अनुसार दोनों को 6–6 महीने मुख्यमंत्री का पद मिलना था। सर्वप्रथम बसपा ने मायावती के नेतृत्व में सरकार बनायी लेकिन यह सरकार छः महीने तक चली। बी.जे.पी. की बारी आने पर बी. एस.पी. ने बी.जे.पी. को समर्थन देने से इंकार कर दिया। लेकिन भाजपा ने बसपा को तोड़कर अपनी रामप्रकाश गुप्त के नेतृत्व में सरकार बनाई। इसके साथ भाजपा में भी दरारें पड़ना शुरू हो गई। रामप्रकाश गुप्ता एक वर्ष तक उ0प्र0 के मुख्यमंत्री रहे। उसके बाद राजनाथ सिंह को मुख्यमंत्री पद पर बैठा दिया गया। भाजपा को कल्याण सिंह को दर किनार करना बहुत भारी पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मई 2002 के विधानसभा चुनावों में उसकी दुर्गति हो गई और वर्ष 2007 के विधानसभा चुनावों में वह अस्तित्व के लिए संघर्षरत दिखती नजर आई। श्री कल्याण सिंह के नेतृत्व में अति पिछड़ी जातियाँ भाजपा से अलग हो गईं। आज भाजपा का सांप्रदायिक मुद्दा भी अपनी आँच खो बैठा है। संप्रति वह पुर्नजीवित होने की कोशिश में है।

भाजपा का अखिल भारतीय स्वरूप –

बी.जे.पी. के अखिल भारतीय स्वरूप को निम्न प्रकार समझा जा सकता है – भाजपा ने 7 अप्रैल 1986 को जारी अपने चुनाव घोषणा पत्र में यह बताया कि वर्तमान शासन पद्धति को परिवर्तित कर नागरिकों के प्रति जबावदेह बनाने तथा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में आमूल चूल परिवर्तन पार्टी की प्रमुख नीति होगी। पार्टी ने आश्वासन दिया कि हमारा लक्ष्य स्वतन्त्रता के इस 50 वर्षों में कॉंग्रेस के कुशासन से मुक्ति तथा नवीन राष्ट्र निर्माण के प्रति बचनवद्धता है और हमारा लक्ष्य राम राज्य के माध्यम से एक सुदृढ़ व तिकाऊ सरकार की स्थापना है। पार्टी ने हिन्दुत्व की अपनी पैनी धार को बनाये रखते हुये घोषणा पत्र में अयोध्या में जन्म स्थान पर श्री राम का भव्य मंदिर बनाने के प्रति संकल्प को दोहराते हुये कहा कि मजबूत और सुरक्षित भारत, मित्रवत सरकार, ऋणमुक्त अर्थव्यवस्था, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन तथा टकराव और दंगा मुक्त समाज, पार्टी का चुनावी घोषणा पत्र का स्वरूप है। भाजपा ने भारतीय विदेश नीति को सुदृढ़ बनाने हेतु अपने घोषणा पत्र में प्रमुखता से स्थान दिया और कहा कि राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की स्थापना सेना को परमाणु शस्त्र उपलब्ध कराना। बंग्लादेश से बढ़ रही अवैध घुसपैठ को रोकना, आन्तरिक सुरक्षा की दृष्टि से जम्मू कश्मीर तथा पूर्वोत्तर राज्यों में अशान्ति का माहौल समाप्त करना, सभी देशों के साथ समानता के आधार पर अच्छे सम्बन्छ स्थापित करना प्रमुख है। भारतीय जनता पार्टी ने फरवरी 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव जारी घोषणा पत्र में अपने उन पुराने मुद्दों को दोहराया जिन पर वह अब तक जोर देती आई थी। नवीन मुद्दों में इसने घोषणा की कि वह संविधान के **अनुच्छेद 356** के दुरुपयोग को रोकने के लिये आवश्यक कदम उठायेगी। भाजपा उत्तरांचल, वनांचल, विदर्भ और छत्तीसगढ़ का अलग **राज्य के रूप** में स्थापना व दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा देने को **धारा–370 को समाप्त** करने को अपने चुनावी घोषणा पत्र में प्रमुखता से स्थान दिया।

13वीं लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन का प्रमुख घटक होने के कारण पार्टी ने अपना पृथक घोषणा–पत्र जारी न करके संयुक्त रूप से जनादेश पाने का प्रयास किया। इस बार उसने विवादास्पद मुद्दे राम मंदिर, **अनुच्छेद–370, समान नागरिक संहिता** को ठण्डे बस्ते में डाल दिया। **24 दलों के राजग** को साथ लेकर भाजपना ने अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में पार्टी ने 339 सीटों पर चुनाव लड़ी और 182 सीटें हासिल की। इन चुनावों में भाजपा ने दक्षिण में अपनी स्थिति मजबूत की और असम में नया आधार बनाया। वर्ष 2002में सम्पन्न विधानसभा चुनावों में भाजपा और उसके सहयोगी दलों को उ0प्र0 तमिलनाडु, पंजाब और उत्तरांचल जैसे महत्वपूर्ण विधानसभा चुनावों में हार का सामना करना पड़ा, लेकिन गोवा तथा गुजरात में भारी विजय से भाजपा ने अपने आपको संभाला। 2003 में सम्पन्न पाँच राज्यों की विधानसभाओं के लिये सम्पन्न चुनावों में **राजस्थान, मध्य प्रदेश** एवं **छत्तीसगढ़** में भाजपा को अभूतपूर्व **सफलता हासिल हुई।**

14वीं लोकसभा चुनाव अप्रैल–मई 2004 में अटल बिहारी बाजपेयी सरकार ने अपने समय से लगभग 8 माह पहले ही लोकसभा विघटन की अनुशंसा कर डाली व चुनावी बिगुल फूँक दिया परन्तु इन चुनावों में भाजपा नीति गठबन्धन कारगार सिद्ध नहीं हुआ। भाजपना अपनी अब तक की सर्वाधिक 182 सीटों से खिसक कर 138 सीटों पर पहुँची और उसे 22.16 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये। फिलहाल दिसम्बर 2007 में हिमाचल प्रदेश और गुजरात विधानसभा के चुनाव नतीजे इस बात के संकेत है कि भाजपा के राजनीतिक सितारे बुलन्दी पर

www.ignited.in

है। आज भाजपा पाँच से ज्यादा राज्यों पर सत्तारूढ़ हुई है। कर्नाटक के अलावा यह पार्टी आज हिमाचल प्रदेश, गुजरात, म0प्र0, राजस्थान, **छत्तीसगढ़ में**

बहुजन समाज पार्टी (बी.एस.पी.)

नई राष्ट्रीय पार्टियों की श्रेणी में बी.एस.पी. नई है। इसकी स्थापना कांशीराम के अथक प्रयासों के फलस्वरूप 14 अप्रैल 1984 में संविधान शिल्पी डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के जन्मदिन के अवसर पर हुई है। बसपा समाज के दलितों के पुनरोद्धार की प्रबल समर्थक है। जब लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा प्रदत्त अवसरों को दिलाने के नाम पर अन्य दलों ने समाज के इन वर्गों की उपेक्षा की तो इस पार्टी का देश कुछ भागों से धीरे–धीरे उदय हुआ। बी.एस.पी. का उद्गम अखिल भारतीय पिछड़ी जाति इनमें मुख्यतः एस.सी., एस.टी., ओ.बी.सी. एवं अल्पसंख्यक 1984 में कांशीराम द्वारा किया गया था। इस पार्टी में शीर्घ ही अपना प्रभाव पूरे देश के सरकारी/कर्मचारियों में बढ़ाया, विशेषकर, उत्तरी राज्यों में। कांशीराम ने ही बसपा से पूर्व 1980 में एक और संगठन डी0एस0 ने दलित, शोषित, समाज, संघर्ष समिति बनायी थी और आगे चलकर 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाजपार्टी की स्थापना हुई। अन्य अल्पमत जातियाँ दस पर राज कर रही है। इसलिए बहुजन समाजपार्टी की स्पष्टवादिता है कि दलितों और पीड़ितों को एकजुट हो जाना चाहिये और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने के लिये लम्बा इंतजार नहीं करना होगा।

पार्टी का मुख्य उद्देश्य ऐसे कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं को तैयार करना जो दलितों को उनके अधिकारों के विषय में शिक्षित कर मार्ग दिखाये। प्रारम्भ में इस पार्टी ने अन्य पार्टियों से अलग चलने की नीति को अपनाया। उसका उद्देश्य दलितों में आर्थिक एवम् सांस्कृतिक आन्दोलन को आगे ले जाना था। लेकिन कुछ समय बाद सत्ता प्राप्ति के लिये पार्टी ने उ0प्र0 में विधानसभा चुनाव 1995, 1997 तथा 2002 में भारतीय जनता पार्टी को साझीदार बनाया तथा 1996 में काँग्रेस के साथ चुनाव पूर्व गठजोड़ भी किया। बसपा ने समाजवादी पार्टी के साथ भी समझौता भी किया। बसपा ने बहुत कम समय में हिन्दी भाषी, राज्यों में अपनी राजनीतिक प्रभाव को इतना बढ़ा लिया है कि काँग्रेस भारतीय जनता पार्टी और जनता दल जैसी बड़ी पार्टियों के चुनावी भविष्य को हासिये पर लाकर खड़ा कर दिया है। उसके परिणाम स्वरूप, हाथीरथ उ0प्र0 के अलावा हरियाणा, राजस्थान, पंजाब और मध्य प्रदेश में अन्य पार्टियों को कमजोर कर है। बी.एस.पी. का दावा एक दलित नेतृत्व के दायरे में केवल ऊँची जातियों को छोड़कर सबको एकत्रित करने की इच्छा शक्ति को दिखाता है। इसकी विशेष सिर्फ दलित समाज के प्रति रहती है जो भारत की कुल संख्या के 16 प्रतिशत से कुछ ही अधिक है। बी.एस.पी. का उत्तर भारत में सफलता के अतिरिक्त अन्य भागों में आंशिक समर्थन ही है। जून 1995 में प्रथम बार बी.एस.पी. अन्य जातियों के सहयोग से उ0प्र0 में सत्ता की भागीदार बनी। मुख्यमंत्री मायावती एक राजनीतिक संवेदनशील भाग की **प्रथम दलित मुख्यमंत्री के रूप में अलग** छवि वाली महिला के रूप में उभरकर सामने आई। तब उनके विचारों में उच्च जाति के प्रति द्वेष विचार धाराओं के प्रति कम श्रद्धा पूर्वाग्रह और गैर–शौकीन व्यवहार की बजह से एक कट्टर दलित प्रेम छलका करता था। वे 2007 में हुए आम विधान सभा चुनावों के बाद उ0प्र0 की चौथी बार मुख्यमंत्री बनी तथा उनकी पार्टी उ0प्र0 विधानसभा में सबसे ज्यादा स्थान जीत कर 206 स्पष्ट बहुमत की सरकार बनाई। उल्लेखनीय बात यह है कि उच्च वर्ग के प्रति घृणा भी गायब नजर आता है। दलित तो उनके साथ दृढ़ता से जुड़े ही है, **ब्राह्मण, मुस्लिम और उच्च वर्ग की** दूसरी जातियों ने भी उन्हें समर्थन दिया है। वर्ष 1991 में भाजपा को 221 सीटें मिली थी। इसके बाद से उ0प्र0 में किसी को भी बहुमत नहीं मिला। अब मायावती बहुमत जुटाने में कामयाब हुई है तो वह उनकी सोशल इंजीनियरिंग का नतीजा है। **लोकतंत्र का यह एक और चमत्कार है।**

बसपा की राजनीतिक का उनका पक्ष दल की लगातार समन्वय और मेलजोल की राजनीति है। बसपा अभी तक एक दृष्टिकोण पर चलती आ रही थी। उनके राजनीतिक व्यवहार में एक तरह की आक्रमकता साफ झलकती थी। दल ने इस बात को जल्दी ही समझ लिया कि नफरत राजनीति के आधार पर आप किसी लम्बी और सार्थक मात्रा को मुकम्बल नहीं कर सकते। यद्यपि बसपा तब सवर्णों के प्रति जहरीली जुवान का इस्तेमाल करती थी। बसपा का नारा हुआ करता था – **तिलक, तराजू और तलवार, जूते मारो इनको चार।** यह राजनीतिक दल मिजाजी की पराकाष्ठा है। इससे राजनीतिक और सामाजिक नफरत के बीज ही बोए जा सकते है। यह लघु सोच की राजनीति का रूप थी। दुर्भाग्य से यह काम मंदगति से किया जाता रहा। उ0प्र0 के ताजा चुनाव में मायावती को मौका दिया तथा उन्होंने भी पूरी समझदारी से इस मौके पर फायदा उठाया। उ0प्र0 की सवर्ण जातियों को अपने साथ लेकर राजनीतिक मेलजोल, **समन्वय और सदभाव की नई इबारत दीवार** पर लिख डाली है। उ0प्र0 की कुल आबादी में ऊँची जातियाँ 30 प्रतिशत हिस्सेदारी है जबकि दलित 21 प्रतिशत है। इनमें आगर मुस्लिमों की 17 प्रतिशत आबादी की जोड़ दिया जाये तो मायावती के लिये जीत का समीकरण बन जाता है और बसपा ने इस आंकड़ों को अनदेखा नहीं किया और इसी को ध्यान में रखते हुये 403 सीटों में से 138 सीटों पर ऊँची जातियों को बसपा का उम्मीदवार बनाया, जिनमें 96 ब्राह्मण थे, इससे पहले 26 ब्राह्मणों ने बसपा टिकट पर चुनाव लड़ा था। जिनमें से सिर्फ 4 को जीत हासिल हुई थी। यह वह दौर था जब उन पर ऊँची बोली लगाने वालों को टिकट बेचने का आरोप लगा। उ0प्र0 की 15वीं विधानसभा के लिये सम्पन्न चुनाव अप्रैल मई 2007 में हुये इन चुनावों में बसपा ने किसी अन्य दल के साथ गठबन्धन किये बिना अकेले अपने दम पर चुनाव लड़ा तथा 403 विधानसभा में 206 सीटें प्राप्त करके अकेले ही सरकार बनाई। जहाँ 2007 में बसपा को 33.06 वोटों के साथ 206 सीटों पर जीत हासिल की। उ0प्र0 में बसपा की इस विजयी यात्रा का पड़ाव मन्द नहीं पड़ेगा व अप्रैल मई में होने वाले लोकसभ चुनावों में दल की भूमिका किसी भी चमत्कारी घटना को अंजाम देने के लिये प्रयासरत है। फरवरी 2012 में होने वाले विधानसभा चुनाव में यद्यपि बसपा को मात्र 88 सीटें ही प्राप्त हुई लेकिन उसके वोट प्रतिशत में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया।

साम्यवादी दल –

भारत में साम्यवादी दल की स्थापना का श्रेय मानवेन्द्र नाथ राय को जाता है। जिन्होंने साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर साम्यवादी पार्टी को 26 दिसम्बर 1925 को स्थापित किया। राय की सलाह पर साम्यवादी दल को ही कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल

www.ignited.in

की शाखा मान लिया गया और उसने 1928 को साम्यवादी दल की कार्य प्रणाली निश्चित की। प्रारम्भ में भारतीय में शुरू हुआ और कई भारतीय साम्यवादियों को सोवियत में इसका प्रशिक्षण नहीं मिला। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में साम्यवादियों ने कॉंग्रेस का सहयोग दिया। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध **(1939 – 45)** के समय कॉंग्रेस और साम्यवादी दल में दृष्टिकोण का अन्तर आकाश पाताल का हो गया। एक तरफ कॉंग्रेस जनता को ब्रिटिश राज्य के विरूद्ध संघर्ष का आह्वान कर रही थी। वहीं दूसरी तरफ साम्यवादी मानते थे कि सोवियत संघ और ब्रिटेन मिलकर नजी जर्मनी के विरूद्ध महायुद्ध लड़ रहे थे, जो कि **स्वतन्त्रता की महत्वपूर्णता को अच्छी तरह जानते है** जो आगे चलकर भारत की स्वतन्त्रता के लिये उपयोगी होगा। इस घटना से **समस्त कॉंग्रेसियों ने एक विचार से महासम्मति के साम्यवादियों को** अपने दल से निकाल दिया। जब भारत का नया संविधान अस्तित्व में आया तो साम्यवादी दल ने इसे दासता का घोषण पत्र कहकर सम्बोधित किया।

साम्यवादी दल का स्वरूप –

दल के संगठन की सबसे छोटी इकाई को सेल कहते हैं। इसकी सदस्य संख्या दो या तीन है। संगठन के सम्मेलन क्रमशः ग्राम, शहर, जिला एवं प्रान्तीय स्तर पर होते हैं। प्रत्येक स्तर के **सम्मेलन की एक** कार्यकारिणी समिति होती है। दल की सर्वोच्च **शक्ति अखिल भारतीय** कॉंग्रेस दल में निहित होती है। इसके प्रतिनिधत्व राज्य सम्मेलनों द्वारा आते है। अखिल भरतीय कॉंग्रेस द्वारा एक राष्ट्रीय परिषद का निर्वाचन होता है और यह परिषद एक केन्द्रिय कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। केन्द्रीय समिति का महासचिव इस दल का मुख्य नेता होता है। दल का एक केन्द्रीय नियन्त्रण आयोग होता है। इस दल का संगठन लोकतांत्रिक केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर आधारित है।

भारतीय राजनीति में साम्यवादी दल बड़े ही कठिन एवं संघर्षों के दौर से गुजरी है। 17 फरवरी 1948 को इस दल के सम्मेलन में साम्यवादियों ने स्वाधीनता को सच्ची स्वाधीनता नहीं माना तथा नेहरू सरकार को पूँजीवाद का संरक्षक बताया। उनका मानना था कि तत्कालीन साकार ऑग्ल अमरीकी विचारधारा के चंगुल में पूरी तरह से फंस चुकी है। अतः दल ने क्रान्तिकारी तत्वों का एक संगठन तैयार कर एक लोकतांत्रिक गठबन्धन बनाने का निर्णय लिया गया। साम्यवादी दल के तत्कालीन महासचिव रणविदे के द्वारा भरतीय संविधान में अविश्वास और रूसी विचारधारा से प्रेरित क्रान्ति के आव्हान पर **मार्च 1947 में** पश्चिम बंगाल सरकार ने साम्यवादी दल को अवैध घोषित कर दिया। कई साम्यवादी नेताओं को देश के विभिन्न भागों से गिरफ्तार कर लिया गया। साम्यवादियों ने देश के विभिन्न भागों में हड़ताल तथा बन्द भी आयोजित किये।

तेलगांना प्रदेश में साम्यवादियों की क्रान्तिकारी (आतंकी) क्रियाकलापों से तंग आकर **केन्द्रिय सरकार ने** उन्हें **निवाकर निरोध** अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार भी किया। प्रथम आम चुनावों में साम्यवादी दल ने लोकसभा चुनावों में 27 स्थानों पर विजय प्राप्त की ओर राज्य विधान मण्डलों में उसने 181 स्थान प्राप्त किये। लोकसभ में सबसे बड़ा विरोधी दल होन के कारण साम्यवादी दल के नेता प्रतिपक्ष ए0के0 गोपालन ने गैर–कॉंग्रेसी दलों का संयुक्त गठबन्धन बनाने का प्रयास भी किया। दूसरे आम चुनाव में दल को लोकसभा में **29 स्थान** प्राप्त हुये। केरल राज्य में इसके चुनावों में साम्यवादियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और **5 अप्रैल 1957** को उन्होंने पूर्ण अपना मंत्रिमण्डल बनाया विश्व के इतिहास में पहलीबार चुनावों के माध्यम से साम्यवादियों को सत्ता में आने का यह पहला अवसर मिला।

साम्यवादियों में मतभेद साम्यवादियों की तीसरी कॉंग्रेस में ही खुलकर सामने आ गये। मतभेद का मुख्य कारण **राष्ट्रीय लोकतांत्रिक** गठबन्धन की प्रासंगिकता या साम्यवादी दल का एक भाग नेहरू सरकार की प्रगतिशील नीतियों में विश्वास जताकर सहयोग करने की माँग कर रहा था जिनमें **अजय घोष, पी0सी0 जोशी** आदि प्रमुख नेता थे तथा दूसरा विरोधी भाग **नेहरू सरकार को पूँजीवाद** परस्त मानकर उसका सक्रिय विरोध करते थे। इन विरोधी गुटों में भूपेश गुप्त, रमन मूर्ति आदि प्रमुख नेता थे। साम्यवादी दल में मतभेद विभाजन का दूसरा चरण पुश्चेव की निः स्तालिनी करण की नीति थी। 1962 के भारत चीन संघर्ष को लेकर भी गम्भीर मतभेद देखा जा सकता था। सन् 1964 में साम्यवादी दल के दोनों गुटों में तनाव बहुत अधिक बढ़ गया। दोनों गुटों में समझौते के काफी प्रयास किये गये, किन्तु वामपंथी गुट के लोगों ने गोपालन के नेतृत्व में 11 सदस्यीय दलों का एक नया गुट संगठित कर लिया। इस गुट को भारतीय साम्यवादी दल **(मार्क्सवादी) कहा जाने** लगा।

साम्यवादी दल के कार्यक्रम –

भारतीय साम्यवादी दलों की प्रेरणा स्रोत कार्लमार्क्स व लेनिन के विचार हैं। साम्यवादी दल का उद्देश्य पुरानी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थ को समाप्त करके एक ऐसे प्रगतिशील समाज का निर्माण करना है जो पूर्ण–रूपेण मार्क्स और लेनिन के सिद्धान्त पर आधारित हो। भारतीय साम्यवादी दल मजदूरों व किसानों के संरक्षण का दावा करता है। साम्यवादी दल एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जिससे असमानता जात–पाति, शोषण व सामाजिक कुरीतियों के लिये कोई स्थान हो, सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो व सामाजिक व आर्थिक **सुरक्षा की गारण्टी हो।** श्री डांगे के नेतृत्व में **साम्यवादी दल ने "चीनी कम्यूनिज्म की अपेक्षा रूसी कम्यूनिज्म को चुना।"**

साम्यवादी दल संवैधानिक तरीकों तथा लोकतंत्र में विश्वास करता है। यह दल सर्वहारा वर्ग की तानाशाही, क्रान्ति की अनिवार्यता को नहीं दोहराता। आम चुनाव 1971 में लोकसभा में इसके कुल सदस्य 1 निर्वाचित हुये। इसने कॉंग्रेस के साथ सहयोग और समर्थन की नीति अपनाई। इस दल का प्रभाव आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल व केरल राज्यों में अधिक है। 1977 के लोकसभा चुनावों में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के विरूद्ध रोष का वातावरण बन चुका था इसलिए कॉंग्रेस सहयोगी होने के कारण 1977 में गठित लोकसभा में साम्यवादी दल के केवल 7 सदस्य थे। 1980 के लोकसभा चुनावों में साम्यवादी दल को 11 स्थानों पर विजय हासिल हुई तथा मई 1980 के विधानसभा चुनावों में **कम्युनिस्ट पार्टी** ने बिहार में अपने प्रभाव को कायम रखते हुये तमिलनाडु और पंजाब में उसने क्रमशः 10 व 9 सीटें प्राप्त की। कम्युनिस्ट पार्टी के **अधिकांश नेता व सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये।** अतः मई 1982 में कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता व सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। अतः मई 1982 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़ा।

पश्चिम बंगाल में बामपंथी मोर्चे को भारतीय बहुमत मिला, पर केरल में पराजय का सामना करना पड़ा। दिसम्बर 1984 के

www.ignited.in

लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने **66 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये** पर 6 स्थानों पर प्रत्याशी विजयी रहे।

मार्च 1987 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़ा। प0 बंगाल में वामपंथी मोर्चे को भारी बहुमत मिला। उसने 294 स्थानों में 251 पर सफलता प्राप्त की, जिसमें केवल 11 सीट कम्युनिस्ट पार्टी की थी। ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव 1996 में हुये, जिसमें **भारतीय साम्यवादी दल ने 43 सीटों** पर चुनाव लड़ा और बारह सीटों पर उसे सफलता मिली। **12वीं लोकसभा के चुनाव में साम्यवादी दल** को 8 सीटें प्राप्त हुई। दल ने 54 सीटों पर अपने प्रत्याशी को दिये थे। 14वीं लोकसभा चुनाव अप्रैल–मई 2004 में दल को 10 सीटें प्राप्त हुई।

साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) –

सन 1964 में साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया था। विभक्त नये दल को भारतीय साम्यवादी दल **(मार्क्सवादी)** कहा गया। इस दल के प्रमुख **नेता प्रमोद दास गुप्ता,** ज्योति वसु, ए0के0 गोपालन तथा पी0 राममूर्ति थे। 1967 के चुनावों में इस दल को साम्यवादी दल के मुकाबले अधिक सफलता मिली। दल लोकसभा में 19 एवं राज्य विधानसभा सभाओं में 128 स्थान प्राप्त हुये। मार्क्सवादी साम्यवादी दल का संगठन साम्यवाद दल की भाँति ही है। निम्न स्तर पर सैल होते हैं और उनके ऊपर ग्राम, शहर, तालुका, जिला एवं राज्य समितियाँ होती है। सभी समितियों की **एक–एक कार्यकारिणी समिति** होती है। केन्द्रीय समिति दल की सर्वोच्च संस्था है। केन्द्रीय समिति एक पोतित ब्यूरो का चुनाव करती है। इसमें दल के प्रमुख नेता सम्मिलित होते हैं।

किसी समय कम्युनिस्ट पार्टी संसद में प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभाती थी और कई राज्यों की विधान सभाओं में भी उसका अच्छा प्रभाव था। बाद में उसका एक बड़ा हिस्सा टूटकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बन गया। पहले जिन राज्यों में कम्युनिस्ट पार्टी प्रभावी थी, वहाँ अब मार्क्सवादी प्रधानता से आगे बढ़ते गये। अब केवल बिहार ही ऐसा राज्य है जहाँ मार्क्सवादियों के मुकाबले कम्युनिस्टों का संगठन ज्यादा मजबूत है। **1971 के मध्यावधि चुनावों में मार्क्सवादी दल** को लोकसभा में 25 सीटें मिली। **पश्चिम बंगाल** इस दल का प्रमुख गढ़ है। परन्तु **आन्ध्र प्रदेश, केरल,** त्रिपुरा में इस दल की संगठन शक्ति काफी मजबूत है। छठीं लोकसभा में इस दल के 22 सदस्य थे। 1980 के लोकसभा चुनाव में मार्क्सवादी दल के 36 सदस्य चुनकर आये जिससे से 27 पश्चिम बंगाल से आये। 1980 के **विधानसभा चुनावों में पार्टी को कोई** विशेष सफलता नहीं मिली। **तमिलनाडु में मार्क्सवादी पार्टी ने 11** सीटें जींती और पंजाब में उसे 5 स्थानों पर उसे विजय मिली।

साम्यवादी पार्टी की विचारधारा, नीतियाँ तथा कार्यक्रम –

मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी डांगे तथा सी0पी0आई0 जैसे संशोधन वादियों का निन्दा करती है जो अपनी वर्म सहयोग की अवधारणा का अनुसरण करना चाहते हैं।

यह सी0पी0आई0 पर आरोप लगाती है कि उससे श्रीमती गाँधी के अधीन काँग्रेस बुर्जुवा जमींदार समुदाय के साथ गठजोड़ किया, जिसने आपातकालीन स्थिति की घोषणा की और सभी विरोधी नेताओं को जेलों में डाल दिया। इस दल के नेता किसानों और मजदूरों की तानाशाही कायम रखना चाहते हैं। यद्यपि उन्होंने चुनाव की राजनीति का परित्याग करना उचित नहीं समझा अर्थात वे **चुनावों में भाग लेते हैं।** परन्तु उसका असली झुकाव **लोकतंत्रीय व वैधानिक पद्धतियों** की ओर न होकर प्रदर्शन, घेराव का मोर्चो की ओर है।

मार्क्सवादी पार्टी पर रूस की ओर यह दबाव डाला जाता रहा है कि वह **काँग्रेस (आई) के प्रति** नरम रूख अपनाये, पर मार्क्सवादी पार्टी इसके लिये तैयार नहीं थी।

मार्क्सवादी दल एक नई शासन प्रणाली चाहता है जिसे 'जन लोकतन्त्र' कहा जाता है। इसके अनुसार एक सर्वहारा राज्य की स्थापना की जानी चाहिए। जिसमें शोषण का कोई स्थान न हो। यह समाजवादी के लिये संसदीय मार्ग को अस्वीकार करता है, मार्क्सवादी दल न्यायपालिका का प्रतिबद्धता पर बल देता है। अभिप्राय यह है कि न्यायपालिका जनता की इच्छा के **अनुरूप कार्य** करें। **सामाजिक सुधार** लाने के लिये जो कानून बनाये जाये उन्हें अदालतों में चुनौती दी जा सके।

मार्क्सवादी दल की मान्यता है कि राज्यों को शक्तिशाली बनाया जाये। उनका कहना है कि समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधान मण्डल को ही प्राप्त हो।

उ0प्र0 के समाजवादी दलों का इतिहास तथा राजनीति में इनका प्रभाव

यद्यपि स्वतंत्रता से पूर्व स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में काँग्रेस से मतभेदों के चलते भारत के समाजवादियों ने **1934 में ही समाजवादी दल** का गठन कर लिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तौर **तरीकों को लेकर** उनमें तथा काँग्रेस में मतभेद बने रहे। आजादी के उपरान्त काँग्रेस ने सत्ता की राजनीत में अपने पैर पसारते शुरू किये जिसमें उसे काफी दिनों तक बहुमत प्राप्त होता रहा।

इसी संदर्भ में उ0प्र0 में प्रथम आम चुनावों **(1952) से लेकर** लगातार आगे काँग्रेस के बढ़ते प्रभाव से समाजवादी लोग यह सोचने पर विवश हुए कि जब तक वे एकत्रित होकर किसी एक झण्डे के तले नहीं आयेंगे, तब तक काँग्रेस पार्टी से मुकाबला नहीं किया जा सकता है। इसके लिए समाजवादियों ने एकता के लिए प्रयास किये। इसका परिणाम यह हुआ कि 29 जून 1964 को उ0प्र0 की प्रजा **सोशलिस्ट पार्टी** तथा सोशलिस्ट पार्टी का विलय होकर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी बनी। इसके बाद उ0प्र0 में समाजवादियों की राजनीतिक शांति का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। लेकिन अब तक के समाजवादियों के इतिहास के अध्ययन से पाते हैं कि वे बहुत दिनों तक झकट्ठे तथा बहुत दिनों तक अलग नहीं रह पाते हैं जबकि उनकी नीतियाँ तथा कार्यक्रम एक है। बस उनके बीच अहं का टकराव तथा नेतृत्व का झगड़ा उनके बिखराव का कारण रहा है और इसीलिए वे बार–बार सत्ता से वंचित रहे और **जब उन्हें सत्ता मिल** भी गई तो वे अधिक दिनों तक सरकार चलाने में **असमर्थ रहे है।**

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी – 1964

29 जून 1964 को समाजवादियों की एकता के प्रयासों के बाद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी तथा सोशलिस्ट पार्टी का विलय हुआ तथा एक नया दल संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। 1965 व 1966 संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के लिये संघर्ष और उपलब्धियों के वर्ष थे। **1967 के** चुनावों में एस0एस0पी0 को उ0प्र0 विधानसभा में 44 सीटें प्राप्त हुई और काँग्रेस उ0प्र0 में 199 सीटों पर विजयी रही। काँग्रेस को मात्र 32.2 प्रतिशत मत प्राप्त हुआ। रामचन्द्र विकल के नेतृत्व में **संयुक्त विधायक** दल की कुछ ही कम थी। परन्तु चुनावों के बाद बहुत से निर्दलीय और विद्रोही काँग्रेसियों के काँग्रेस में वापस आ जाने के कारण काँग्रेस चन्द्रभान गुप्ता के नेतृत्व में सरकार बनाने में सफल रही। इसके साथ ही संयुक्त विधायक दल के रूप में विपक्षी दलों के मिलकर कार्य करने की नीति से डॉ0 लोहिया की गैर–काँग्रेसवादी रणनीति को विशेष बल मिला। 1967 के चुनावों में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी तथा रिपब्लिकन पार्टी ने 19.2 मत पाकर 65 स्थान हासिल किये। मतदाताओं के 21.7 प्रतिशत वोटों के साथ इसे **98 सीटें मिली।** इनको मिलाकर ही संयुक्त विधायक दल बना था।

1967 के चुनाव सही मायनों में देखा जाय तो देश और प्रदेश की राजनीति में आ रहे परिवर्तनों के द्योतक थे। पं0 नेहरू की मृत्यु के बाद विपक्षी दलों का प्रभाव क्षेत्र दक्षिण और वामपंथी दोनों दिशाओं में बढ़ रहा था। इसके साथ ही सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी जातियाँ, भाषाई, धार्मिक और आदिवासी अल्पसंख्यकों में राजनीतिक चेतना तेजी से बढ़ रही थी। अब तक राजनीतिक शक्ति के लिये संघर्ष जाति और धर्म की विभाजक रेखाओं में बंटे हुये गुटों के बीच होता था परन्तु अब समरूप सामाजिक और जातियों वर्गों के बीच संघर्ष बन गया।

पिछड़ी जातियों का राजनीतिक रूप से संगठित होना एक अति महत्वपूर्ण सामाजिक ध्रुवीकरण था। काँग्रेस पार्टी के संगठन में उनका प्रवेश उच्च जाति के नेताओं के लिये एक **सीधी चुनौती था, क्योंकि** स्वयं उनका नेतृत्व पिछड़े वर्ग के उन उभरते हुये नेताओं के सहयोग पर निर्भर करता था जो अपनी जाति के अधिकांश मतदाताओं के वोट उन्हें दिलवा सकते थे। प्रतिष्ठित अभिजात्य वर्गों और **पुराने आश्रितों के बीच** चल रहे **संघर्ष को समझौते के माध्यम से सुलझाना सम्भव न** था। समस्या के समाधान के दो रास्ते थे, या तो प्रभावशाली खेतिहर जातियाँ जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में पार्टी संगठन पर हावी थी और व्यवसायी ठेकेदार तथा फैक्टरी मालिक जो शहरों में प्रभुत्व जमाये बैठे थे स्थिति से समझौता करें और सच्ची शक्ति उसके हकदार पिछड़े वर्गों को दे दिया फिर पिछड़ी जातियाँ ही बाध्य होकर काँग्रेस को छोड़ दें।

बी0के0डी0 (भारतीय क्रांतिदल, 1967)

इस पार्टी की स्थापना चौधरी चरण सिंह ने काँग्रेस छोड़कर 1967 में की थी। वस्तुस्थिति यह भी काँग्रेस संगठन पर उच्च जातीय वर्गों और पूंजीपतियों की पकड़ जरूरत से ज्यादा मजबूत हो गयी थी। इन परिस्थितयों में पिछड़ी और दलित जातियों के **हितों के लिये काँग्रेस** से कोई भी अपेक्षा करना व्यर्थ था। इसी कारण 1967 के चुनावों के तुरन्त बाद चौधरी चरण सिंह ने काँग्रेस छोड़ने का निश्चय किया। चौधरी चरण सिंह द्वारा अपने 17 विधायक साथियों के साथ काँग्रेस से त्याग–पत्र देने के कारण तत्कालीन काँग्रेस **सरकार अल्पमत में आ गयी। अप्रैल 1967** में डॉ0 रामनोहर लोहिया के अथक प्रयासों से उ0प्र0 में पहली बार गैर–काँग्रेस सरकार के नेतृत्व में संयुक्त विधायक दल के मंत्रिमण्डल को शपथ दिलायी गयी। यह भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। उल्लेखनीय यह है कि संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने संयुक्त विधायक दल की सरकार को पूर्ण समर्थन दिया। परन्तु जनहित में उसने अपनी विचारधारा के विकास और जनसमस्याओं को लेकर आन्दोलन का सिलसिला जारी रखा।

संयुक्त विधायक दल की साझा सरकार के **विभिन्न घटकों** में मंत्रियों के विभागों एवक अन्य पदों के वितरण, आर्थिक योजना की नीतियों, भूमि सुधारों, भाषा, साम्प्रदायिकता और पिछड़ी जातियों के आरक्षण के प्रश्नों पर असहमति होने के कारण प्रदेश प्रशासन पंगु होकर रह गया। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने भूमिकर विवाद और मोदी नगर में कार्यकर्ताओं पर गोली चलाये जाने के विरोध में किये गये अधिवेशन में संयुक्त विधायक दल की सरकार से अपना अपना समर्थन वापस लेने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप **20 फरवरी 1969 को चौधरी चरण सिंह** ने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया और **26 फरवरी को प्रदेश** में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया तत्पश्चात मध्यावधि चुनाव हुआ।

1967–1969 के बीच उ0प्र0 की राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पहली बार काँग्रेस ने उ0प्र0 में **सत्ता खोई और उसके बाद काँग्रेस** में अन्तर्कलह की शुरूआत हुई।

दूसरी ओर चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में संगठित भारतीय क्रान्तिदल की जड़े मजबूती प्राप्त कर रही थी। भारतीय क्रान्तिदल की तुलना में अन्य विपक्षी दलों की स्थिति निराशा जनक थी। 12 अक्टूबर 1967 के बाद डॉ0 राम मनोहर लोहिया जैसे प्रभावशाली नेता की मृत्यु के बाद समाजवादी आन्दोलन का पैनापन स्पष्ट रूप से कम हो गया। एस0एन0पी0 का जनाधार मुख्यतः पिछड़ी जातियों, किसानों और मजदूरों पर आश्रित था। इन वर्गों के **भारतीय क्रान्तिदल की तरफ आकृष्ट होने** के कारण एस0एस0पी0 की जड़े कमजोर होती जा रही थीं। चुनावों तक आते–आते एस.एस.पी. की आम जनता पर पकड़ ढीली होती गयी और बी.के.डी. की पकड़ मजबूत हो गयी। इसी का परिणाम था कि 1969 के चुनाव में बी0के0डी0 ने 98 सीटें जीतकर अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की।

उ0प्र0 में चौधरी चरण सिंह दूसरी बार मुख्यमंत्री (1969–70)

जब प्रदेश की राजनीति में नये–नये समीकरण बनकर आ रहे थे। केन्द्र में इन्दिरा गाँधी की स्थिति दयनीय थी। उन्हें काँग्रेस के स्वाभिमानी नेताओं के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ रहा था। अन्ततः अपने पद को बचाने के लिये उन्होंने पार्टी का विभाजन करा दिया। श्रीमती गाँधी के नेतृत्व वाला सत्ताधारी गुट काँग्रेस (आर) और श्री निज लिंगप्पा के नेतृत्व वाला गुट काँग्रेस (ओ) के नाम से जाना गया। इस विभाजन के परिणाम स्वरूप उ0प्र0 में काँग्रेस (ओ) का नेतृत्व मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्ता ने और काँग्रेस (आर) का नेतृत्व **कमलापति त्रिपाठी ने संभाला।** प्रदेश में एक साझा सरकार का बनना आवश्यक हो गया। **भारतोय क्रान्तिदल** और काँग्रेस (आर) के बीच समझौता होने के बाद चौधरी चरण सिंह ने नेतृत्व में नई साझा सरकार बनी। चूँकि दोनों दलों की विचारधाराओं में परस्पर कोई मेल नहीं था, कुछ ही महीनों में उनके मतभेद सामने आ गये। केन्द्र में श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार थी, उन्होंने

www.ignited.in

उ0प्र0 में बी0के0डी0 मंत्रिमण्डल को तुरन्त **बर्खास्त कर दिया।**

संयुक्त विधायक दल की सरकार –

20 अक्टूबर 1970 को उ0प्र0 में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद पाँच राजनीतिक पार्टियों कॉंग्रेस (ओ) संयुक्त **सोशलिस्ट पार्टी, जनसंघ,** स्वतन्त्र पार्टी और भारतीय क्रान्तिदल ने मिलकर संयुक्त विधायकदल का निर्माण किया जिसके परिणामस्वरूप त्रिभुवन नारायण सिंह प्रदेश के नये मुख्यमंत्री बने। सन् 1971 के लोकसभ चुनावों में समाजवादियों को गहरा धक्का लगा। इनमें एस.एस.पी. को तीन तथा पी.एन.पी. को मात्र 2 सीटें मिली।

उन निराशाजनक परिणामों के कारण समाजवादियों को एकता स्थापित करने की जरूरत हुई। कई चक्रों की वार्ता के बाद 1 अगस्त 1971 को दोनों पार्टियों के विलय के बाद कर्पूरी ठाकुर की अध्यक्षता में नई सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। मधु दण्डवते को पार्टी के महासचिव चुना गया। दोनों दलों के विलय के बावजूद डॉ0 लोहिया का गैर–कॉंग्रेसवाद की रणनीति को लेकर पार्टी में मतभेद बने रहे। राजनारायण डॉ0 लोहिया की नीतियों का ज्यों का त्यों अनुशरण करने पर बल दे रहे थे तथा वे और उनके समर्थक श्रीमती गाँधी की समाजवादी नीतियों को ढकोसला मान रहे थे। वहीं **एस.एस.एम. जोशी,** एन.डी. गौर, मधुलिमये और जार्ज फर्नाडीज आदि का कहना यह था कि श्रीमती गाँधी के प्रगतिशील प्रयासों का समर्थन किया जाना चाहिये। वैचारिक मतभेदों और मार्च 1972 के राज्यसभा चुनावों में उ0प्र0 सीट के लिये **राजनारायण को सोशलिस्ट पार्टी का उम्मीदवार** न बनाये जाने और फिर उनमें विद्रोह के कारण पार्टी विभाजित हो गयी।

समाजवादी पार्टी की लगभग पूरी उ0प्र0 शाखा और कुछ अन्य साथियों के सहयोग से राजनारायन ने 14 मई 1972 को **इलाहाबाद** में लोहियावादी सोशलिस्ट पार्टी का निर्माण किया। पहले कर्पूरी ठाकुर ने दोनों गुटों में एकता कराने के प्रयास किये उसके बाद अन्ततः कर्पूरी ठाकुर और राजनारायण गुटों ने मिलकर 1972 में पटना में **एस.एस.पी.** को पुर्नजीवित किया। यह एस.एस.पी. पार्टी यद्यपि किसानों एवं पिछड़ी जातियों की थी, लेकिन वह उ0प्र0 में अपना प्रभाव स्थापित नहीं कर सकी। क्योंकि चौधरी चरण सिंह का व्यक्तित्व (भारतीय क्रान्तिदल के रूप में) इन जातियों के पुनरूत्थान के प्रतीक बन चुके थे। **उ0प्र0 में** ईमानदार और **कड़े प्रशासक के रूप में उन्होंने काफी ख्याति अर्जित** की थी तथा जमींदार उन्मूलन विधेयक को पारित कराने में उनकी ऐतिहासिक भूमिका के हितों के लिये संघर्ष करते रहे थे। इन तथ्यों के प्रकाश में अपने बढ़ते हुये जनाधार के कारण चरण सिंह, श्रीमती इंदिरा गाँधी के बाद दूसरी प्रमुख शक्ति बनकर उभर रहे थे। इसी का परिणाम था कि उ0प्र0 में प्रमुख विपक्षी पार्टियाँ एक होकर चरण सिंह की भारतीय क्रान्ति दल के बैनर तले चुनाव लड़ने को तैयार होने लगी। भारतीय क्रान्तिदल = बी.के.डी. + एस.एस.पी. + मुस्लिम मजलिस। लेकिन 1974 के चुनाव में इसको सफलता नहीं मिली। यह केवल 106 सीटें ही जीत सकी।

भारतीय लोकदल –

1974 के आम विधानसभा चुनावों के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया जब तक विपक्ष में एकता नहीं होगी तब तक विपक्ष सफल नहीं हो सकता। इसी परिप्रेक्ष्य में विपक्षी एकता की महती आवश्यकता महसूस की गयी। विपक्षी एकता के प्रबल समर्थक चौधरी चरण सिंह, राजनारायण ने नई पार्टियों के समक्ष एकता का प्रस्ताव रखा। चौधरी चरण सिंह, राजनारायण, पीलू मोदी, बीजू पटनायक और बलराज मधाके आदि नेताओं के बीच हुई सहमति के परिणाम स्वरूप 29 अगस्त 1974 को स्वतन्त्र पार्टी, उत्कल कॉंग्रेस भारतीय क्रान्तिदल, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और कई अन्य छोटे–2 दलों के विलय बाद एक नये राष्ट्रीय दल भारतीय लोकदल का गठन हुआ। चौधरी चरण सिंह को दल के अध्यक्ष, बीजू पटनायक उपाध्यक्ष और पीलू मोदी महासचिव नियुक्त हुये। भारतीय लोकदल के अस्तित्व के बाद मुलायम सिंह यादव, चौधरी चरण सिंह के सानिध्य में आये।

जनता पार्टी का गठन (11 फरवरी 1977) –

जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा और तात्कालिक स्थिति का सामना करने के लिये प्रमुख विपक्षी नेताओं ने एक नई पार्टी के निर्माण की आवश्यकता हुई। **जय प्रकाश नारायण की प्रेरणा** और चौधरी चरण सिंह के प्रयासों से भारतीय लोकदल, जनसंघ, **कॉंग्रेस (ओ)** और समाजवादी दल ने 11 फरवरी 1977 को जनता पार्टी के नाम से एक दल बनाया। जगजीवन राम की सी.एफ.डी. ने जिसमें मुख्य रूप से हेमवती नन्दन बहुगुणा और नन्दिनी सतपथी प्रमुख थे। जनता पार्टी के चिन्ह पर लड़ने का निर्णय लिया। नई पार्टी की आचार्य कृपलानी और श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित का आशीर्वाद भी प्राप्त था।

इस पार्टी के अधीन मार्च 1977 में हुये लोकसभा चुनावों में जनता पार्टी को महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में पहलीबार किसी गैर कॉंग्रेसी दल को विशाल जन समर्थन प्राप्त हुआ था। जनता पार्टी को लोकसभा में 302 सीटें मिली। यह जीत असत्य पर सत्य, अत्याचार और दमन पर सहिष्णु विरोध, परिवारवाद पर जनतन्त्र और अधिनायकवाद पर लोकतन्त्र की विषय की द्योतक थी।

केन्द्र में जनता पार्टी की जीत के बाद जनता सरकार ने माना कि अधिनायकवादी कॉंग्रेस के विरूद्ध मिले इस अपार जनमत को देखते हुए राज्यों में कॉंग्रेसी सरकारों को सत्ता में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है, इसलिये उ0प्र0 की सरकार भंग कर दी गयी। उ0प्र0 विधानसभा चुनाव में थी। जनता पार्टी को सफलता प्राप्त हुई।

उ0प्र0 की विधानसभा में 352 सीटों पर कब्जा किया तथा रामनरेश यादव को मुख्यमंत्री बनाया गया था। 1979 के प्रारम्भ में प्रदेश की राजनीति में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये और रामनरेश को हटाकर 28 फरवरी 1979 को बनारसी दास को उ0प्र0 का मुख्यमंत्री बनाया गया।

जनता पार्टी की धर्म निरपेक्ष छवि को लेकर इसके प्रमुख नेताओं में प्रारम्भ से ही गम्भीर मतभेद थे। इसी कारण 1979 तक ही राजनीति में एक नई उथल पुथल शुरू हुई। भारतीय **लोकदल तथा समाजवादी** घटकों का हमेशा से ही यह मत रही है कि जनता पार्टी को देश के हित में पूरी तरह से धर्म निरपेक्ष संगठन होना चाहिये, इस कारण जनता पार्टी में **जनसंघ** के सदस्यों की दुहरी सदस्यता को लेकर गहरे मतभेद थे। मधुलिमये ने आर.एस.एस. व इनकी शाखाओं से अनुरोध

www.ignited.in

किया कि वे जनता पार्टी से अपने सम्बन्धों की सही जानकारी दें।

उ0प्र0 सरकार सरकार ने आर.एस.एस. की शाखाओं पर प्रतिबन्ध लगाने क प्रयास किया। परिणामतः रामनरेश यादव को उ0प्र0 के मुख्यमंत्री का पद त्यागना पड़ा। उधर केन्द्र में पार्टी के प्रमुख नेताओं ने मोरारजी देसाई सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया जिससे सरकार अल्पमत में आ गयी। मोराराजी देसाई को त्याग पत्र देना पड़ा। चौधरी चरण सिंह भारत के नये प्रधानमंत्री बनाये गये, उन्होंने लोकसभा का तुरन्त चुनाव कराया।

लोकदल की स्थापना –

26 सितम्बरा 1979 को पुनः लोकदल की स्थापना हुई। 1980 में मुलायम सिंह यादव लोकदल के अध्यक्ष बने। श्रीमती इन्दिरा गाँधी केन्द्र की सत्ता में आयी और उन्होंने भी उ0प्र0 की सरकार भंग कर दी। चुनाव उपरान्त काँग्रेस पुनः सत्ता में आयी लेकिन श्री मुलायम सिंह यादव उ0प्र0 की राजनीति में स्थायी स्तम्भ बनकर उभरे।

डी.एम.के.पी. (1984) –

1984 में चौधरी चरण सिंह के प्रयासों के परिणम स्वरूप एक दल का गठन हुआ (दलित मजदूर, किसान पार्टी) डी.एम.के.पी. 20 अक्टूबर 1984 को हेमवती नन्दन बहुगुणा की लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय सोशलिस्ट पार्टी का लोकदल में विलय हुआ। भाजपा ने दलित मजदूर किसान पार्टी में अपना गठबन्धन स्वीकार नहीं किया। चौधरी चरण सिंह **डी.एम.के.पी.** के अध्यक्ष बने और हेमवती नन्दन बहुगुणा उपाध्यक्ष में लोग विपक्षी दलों की एकता के लिये प्रयास करते रहे।

1984 का वर्ष काँग्रेस पार्टी के लिये कठिन था वो निरन्तर अपना जनाधार खो रही थी, उसके वायदे झूठे हो रहे थे, दुर्भाग्यवश 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या हो गयी। देश स्तब्ध रह गया। काँग्रेस को सहानुभूति वोट मिला तथा सत्ता काँग्रेस के पास और श्री राजीव गाँधी को देश का प्रधानमंत्री बनाया गया। इसके बाद जो काँग्रेस के खिलाफ विपक्ष एकजुट हो रहा था वो भी बिखर गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि विपक्षी राजनीति समाप्त हो जायेगी।

उ0प्र0 विधान सभा के आम चुनाव 1984 में हुये, यह चुनाव गैर काँग्रेसी दलों के लिये एक अग्नि परीक्षा थे। उ0प्र0 में लोकदल ने मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में चुनाव लड़ा और संसदीय चुनाव को देखते हुये उ0प्र0 विधान सभ का चुनाव परिणाम उत्साहवर्धक रहा। लोकदल ने आम विधानसभा चुनाव में **85 सीटें जीतीं।** मुलायम सिंह यादव नेता विरोधी दल बने। चौधरी चरण सिंह ने बस्ती की एक सभा में मुलायम सिंह को **राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषित** किया। हेमवती नन्दन बहुगुणा, देवी लाल और कर्पूरी ठाकुर जैसे वरिष्ठ नेताओं के साथ मुलायम सिंह यादव लोकदल को मजबूत करने में जुट गये, लेकिन लोकदल का एक गुट अभी भी जोड़–तोड़ की राजनीति में लगा रहा। इसी के चलते 10 फरवरी 1987 को मुलायम सिंह को नेता विरोधीदल के पद से हटा दिया और लोकदल (अ) सत्यपाल सिंह यादव को नेता विरोधी दल बनाया गया। इससे लोकदल की एकता खण्डित हो गयी।

मुलायम सिंह यादव ने समय की आवश्यकता के अनुसार डॉ0 राम मनोहर लोहिया तथा चौधरी चरण सिंह की सशक्त विपक्ष की नीति पर चलते हुये अपनी उत्कृष्ट राजनीति से जनतापार्टी, माकपा, जनवादी पार्टी, संगम विचार मंच और काँग्रेस (ज) से मिलकर क्रान्तिकारी मोर्चे की आधारशिला रखी। लेकिन यह क्रान्तिकारी मोर्चा विरोधी दल की मान्यता नहीं दिला सका।

15 अक्टूबर 1987 को लखनऊ में क्रान्तिकारी मोर्चे की रैली आयोजित की गई। इस रैली में सभी प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं को एक मंच पर ला दिया गया। जनता के उत्साह से प्रभावित होकर इन वरिष्ठ नेताओं ने राष्ट्रीय स्तर पर भी एकता का प्रयास करने का निर्णय किया।

वी.पी. सिंह ने बोफोर्स गन डील पनडुब्बी सौदों और सुमिताओं कम्पनी सौदों में रिश्वत का मुद्दा बनाकर काँग्रेस को छोड़ दिया और विपक्ष में शामिल हो गये। जनता को काँग्रेस पार्टी समझाने में असफल रही और विपक्षी पार्टियाँ **सशक्त रूप से संगठित हो गयी।**

लोकदल हमेशा की तरह इन एकता प्रयासों में अगुआ रही। पार्टी की तरफ से हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री चौधरी देवीलाल को एकता वार्ताओं में भाग लेने को कहा गया। उन्होंने वी.पी. सिंह, चन्द्रशेखर, जॉर्ज फर्नाडीज, एन.टी. रामाराव, रामकृष्ण हेगड़े और अन्य प्रमुख नेताओं से राष्ट्रीय लोकदल के निर्माण के लिये कई वार्तायें की और राष्ट्रीय का निर्माण किया।

जनतादल –

लोकदल, जनतापार्टी तथा जनमोर्चा ने सभी स्वार्थी नेताओं की उपेक्षा करके **11 अक्टूबर 1988 को जनतादल** का निर्माण किया। इसके लिये 15 जनवरी 1988 को कानपुर में एक विशाल रैली की जिसमें लगभग 2 लाख की भीड़ थी। चौ0 देवी लाल के 75वें जन्म दिवस पर वोट क्लब दिल्ली में रैली हुई। इससे स्पष्ट हो गया कि जनता दल ही काँग्रेस का विकल्प है।

इसके पूर्व 17 सितम्बर 1988 को सात दलों का एक 'राष्ट्रीय मोर्चा' बना। इस मोर्चे में भाजपा तथा विभिन्न वामपंथी की दल शामिल नहीं थे, लेकिन चुनावी तालमेल के लिए वे तैयार थे। 13 अक्टूबर 1988 को वी.पी. सिंह ने घोषणा की। 60 प्रतिशत टिकट लोकसभा तथा विधान सभा में **एस.सी. व एस.टी. तथा पिछड़ी जातियों** को दी जायेगी। वी.पी. सिंह ने इसी समय बोफोर्स तोप सौदे का भी मुद्दा उठाया जिसमें काँग्रेस के राजीव गाँधी पर एकदम सीधा–सीधा आरोप था कि उन्होंने इसमें दलाली खाई है।

इसमें उ0प्र0 की सभी किसान जातियाँ, ओ.बी.सी., एस.सी., मुसलमान तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध जागरूक नागरिकों का ध्रुवीकरण हो चुका था। परिणाम स्वरूप, उ0प्र0 **समेत समस्त भारत** में जनता दल के नेतृत्व वाले 'मोर्चे' को अच्छा खासा समर्थन मिला। उ0प्र0 विधानसभा में 1989 के आम विधानसभा चुनाव में जनता दल को 208 सीटें तथा लोकसभा में 56 सीटें मिलीं। उ0प्र0 में श्री मुलायम सिंह यादव को मुख्यमंत्री बनाया गया तथा केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चे के प्रधानमंत्री बने। मुलायम सिंह ने अपने इस कार्यकाल में कई ऐसे कार्य किये जिससे किसान, दलित तथा मुसलमानों को लाभ पहुँचा। उन्होंने कृषि उपज का समर्थन मूल्य बढ़ाया तथा केन्द्र सरकार द्वारा एस.सी. , एस.टी. के लिये संसद व विधान सभाओं में 10 वर्ष का आरक्षण बढ़ाया। भाजपा तथा काँग्रेस (ई) ने उ0प्र0 में उसका

विरोध किया लेकिन सफलता नहीं मिली। इन असफलताओं से खीझकर भाजपा ने अपने साम्प्रदायिक चरित्र को उजागर करने वाले कई मुद्दे उभारने शुरू कर दिये। आडवाणी ने 12 सितम्बर 1990 को सोमनाथ से अयोध्या तक की रथयात्रा की घोषणा कर दी और इससे राष्ट्रीय मोर्चा तथा भाजपा के बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं।

इसके बाद राष्ट्रीय राजनीति की धुरी तीन दल काँग्रेस, जनता दल व भाजपा हो गये। ये तीनों ही दल अपने–अपने घोषणा पत्र के आधार पर जनता में आपनी–अपनी पैठ बढ़ाने का कार्य करने लगे। प्रदेशों में क्षेत्रीय पार्टियों का वर्चस्व बढ़ने लगा। इधर नेतृत्व के प्रश्न को लेकर काँग्रेस से आये वी0पी0 सिंह गुट व पुराने किसान तथा समाजवादी नेता देवीलाल व चन्द्रशेखर के बीच भी मनमुटाव शुरू हो गये।

जनता दल में भी गुटबाजी दो समूहों के बीच थी। प्रथम गुट वी. पी. सिंह के नेतृत्व में काँग्रेस छोड़कर जनता दल में शामिल हुए थे जैसे – अरूण नेहरू, **सत्यपाल मलिक** एवम् **आरिफ मोहम्मद खान।** दूसरे गुट में पुराने समाजवादी नेता थे। यहाँ पर दल के अन्दर दल की राजनीति हावी होने लगी। वी.पी. सिंह ने अपने पुराने साथियों को महत्व दिया तथा उन्हें महत्वपूर्ण विभाग दिये। वे उ0प्र0 की राजनीतियों में भी रूचि लेने लगे और मुलायम सिंह की जगह अजित सिंह को मुख्यमंत्री बनाने में रूचि रखने लगे। एक तरफ वी.पी. सिंह थे तो दूसरी तरफ देवी लाल, चन्द्रशेखर व मुलायम सिंह यादव का गुट था।

इसी परिपेक्ष्य में वी.पी. सिंह ने उपप्रधानमंत्री देवी लाल को अपने मन्त्रिमण्डल से हटा दिया। इसके परिणाम स्वरूप देवी लाल ने विरोध स्वरूप दिल्ली में रैली की तो वी.पी. सिंह ने 27 प्रतिशत आरक्षण लागूकर पिछड़ों का मसीहा बनने की कोशिश की। इससे पूरी राजनीति जातीय ध्रुवीकरण और मण्डल, कमण्डल की हो गयी। भारतीय जनता पार्टी ने रामरथ के माध्यम से हिन्दुत्व का एजेण्डा तैयार किया तो मुलायम सिंह यादव ने **धर्म निरपेक्षता** का बीड़ा उठाकर समाज में एक पहचान बनाने की कोशिश की। अंततः वी.पी. सिंह सरकार से भाजपा ने समर्थन वापिस कर लिया। भाजपा के समर्थन वापिस लेने से वी.पी. सिंह की सरकार अल्पमत में आ गई। काँग्रेस ने कहा कि अगर जनतादल अपना नेता बदले तो वह धर्मनिरपेक्षता के आधार पर समर्थन दे सकती है। इस पर पार्टी में मतभेद बढ़ जाने के कारण पार्टी टूट गयी। चन्द्रशेखर के नेतृत्व में चौधरी देवी लाल, मुलायम सिंह, चिमन भाई पटेल व सत्यप्रकाश मालवीय आदि नेताओं ने समाजवादी जनता पार्टी का गठन किया। विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा विश्वास प्रस्ताव पर हार जाने पर समाजवादी जनता पार्टी ने चन्द्रशेखर के नेतृत्व में काँग्रेस के सहयोग से सरकार का गठन किया।

इसके बाद उ0प्र0 में वी.पी. सिंह के समर्थको ने मुलायम सिंह की सरकार को गिराने की कोशिश शुरू कर दी लेकिन 20 नवम्बर 1990 को विधानसभा में काँग्रेस के समर्थन से विश्वास मत प्राप्त हो गया। लगभग छः महीने में समाजवादी जनता दल की बढ़ती हुई लोकप्रियता को कॉग्रेस पचा नहीं पाई। सभी दलों को अपने–अपने जनाधार की चिंता हो रही थी। भाजपा कमण्डल की राजनीति पर सवार होकर अपना जनाधर बढ़ाने का प्रयत्न कर रही थी। काँग्रेस को अपने जनाधार की चिंता सताने लगी और उसे सजपा सरकार के कामगकाज में रोड़े अटकाने आरम्भ कर दिये। जून 1991 में उसने चन्द्रशेखर सरकार से समर्थन वापिस ले लिया। परिणाम स्वरूप उ0प्र0 की मुलायम सिंह यादव की सरकार को भी जाना पड़ा और उ0प्र0 में तथा देश में मध्यावधि चुनाव अवश्यम्भावी हो गया।

उ0प्र0 में समाजवादी जनता पार्टी द्वारा राम मंदिर मुद्दे पर कड़ा रूख अपनाया जाना भाजपा के लिए वरदान साबित हुआ। वही 1991 के विधानसभा चुनाव में सजपा को इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। इस चुनाव में भाजपा को 33 प्रतिशत मतों के साथ 221 सीटें मिली। वही सजपा को 32 सीटें ही मिल सकी। इस समय समाजवादी बँट गये थे। इसे विरोधियों ने मुलायम सिंह की राजनीतिक हत्या करार दिया था, लेकिन उनका संघर्ष जारी रहा। आगे चलकर उ0प्र0 की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए उन्हें चन्द्रशेखर भी अप्रसांगिक लगने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि मुलायम सिंह यादव ने सजपा को छोड़कर समाजवादी पार्टी का गठन कर नई राह पर चलने का संदेश दिया।

समाजवादी पार्टी की स्थापना और उसके कार्यक्रम –

8 साल बाद बुधवार **4 नवम्बर 1992** को समाजवादी पार्टी फिर जीवित हो गयी और समाजवादी नेताओं ने तय किया कि समाजवादी पार्टी किसी दल में विलय नहीं करेगी और शपथ ली गयी कि पार्टी टूट नहीं होगी। (जनसत्ता, नई दिल्ली, 5 नवम्बर, 1992) समाजवादी पार्टी बनाकर दरअसल मुलायम सिंह यादव उ0प्र0 के एक छत्र समाजवादी नेता बनने की महत्वाकांक्षा थी। पिछले दिनों श्री वी.पी. सिंह व अजीत सिंह की राजनीति से वे तंग आ चुके थे। उन्होंने सोचा जब सामाजिक आंकड़े उनके साथ हैं तो वी.पी. सिंह की अधीनता क्यों स्वीकार करूँ। चन्द्रशेखर भी उन्हें अप्रसांगिक लगे। इसलिये वो सजपा से अलग हो गये।

जून 1991 से दिसम्बर 1993 तक का काल मुलायम सिंह यादव की राजनीति का संकटकाल था। क्योंकि कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए अयोध्या पहुँचे कारसेवकों के प्रति कड़ा रूख अपनाने उ0प्र0 का हिन्दू उनसे नाराज हो गया था जिसकी परिणति यह हुई कि जून 1991 के विधानसभा चुनावों में उसे हार का सामना करना पड़ा। लेकिन मुलायम सिंह यादव ने अगले डेढ़ वर्ष तक संघर्ष जारी रखा। साथ–साथ वे अगले राजनीतिक विकल्प के बारे में भी सोचते रहे। समाजवादी पार्टी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि एक समाज वोट बैंक के लिए तीन पार्टियों समाजवादी पार्टी, जनता दल व सजपा, आपस में संघर्ष कर रही हैं। ऐसे में मुख्य विरोधी भाजपा से कैसे निपटा जाये। अतः भाजपा से मुकाबला करने के लिए उसने नई उभरती शक्ति बसपा से तालमेल बिठाया। देश के बुद्धिजीवियों ने इस समझौते को गम्भीरता से नहीं लिया क्योंकि इस समय बसपा के पास मात्र 12 सीटें थी। चूँकि मुलायम सिंह यादव ने साम्प्रदायिक शक्तियों से कड़ा मुकाबला कर मुस्लिमों का समर्थन 1990–91 से ही प्राप्त करना शुरू कर दिया था, ऐसे में जीत के लिए दलितों के समर्थन की जरूरत थी। इस गठबन्धन का परिणाम यह हुआ कि 1993 के आम विधानसभा चुनावों में सपा तथा बसपा को 176 सीटें प्राप्त हुई। यह उ0प्र0 की राजनीति में पहली बार पिछड़ों तथा दलितों की एकता का सफल प्रयोग था। इस जीत का भारतीय राजनीति में सैद्धान्तिक महत्व इतना बढ़ गया कि हारे हुए जनता दल के नेता कहने लगे यह तो हमारी ही जीत है तथा हमारे सिद्धान्तों की जीत

है। इसी चुनाव के बाद सजपा तथा जनता दल उ0प्र0 में हाशिये पर चले गये।

समाजवादी पार्टी किसानों तथा पिछड़ी जातियों की एक मात्र नुमाइंदा बनकर बने। लेकिन कुछ महीनों बाद उ0प्र0 में एस.सी. व एस.टी. के खिलाफ कुछ **ऐसी घटनायें घटी** जिससे इस गठबन्धन में तनाव आने शुरू हो गये। **तनाव का कारण** यह भी था कि बसपा को यह डर सताने लगा कि कहीं उसके जनाधार को सपा न खींच ले। 1995 के जिला पंचायत चुनावों में सपा 30 सीटें, भाजपा 9 सीटें तथा बसपा को 1 सीट मिली जो चुनाव का तात्कालिक कारण बना। अंततः नेतृत्व इनता बढ़ा गया कि 2 जून 1995 को बसपा ने सपा सरकार से समर्थन वापिस ले लिया। इससे होकर समाजवादी पार्टी के कुछ दबंग विधायकों तथा कार्यकर्ताओं ने बसपा की नेत्री मायावती से हद दर्जे की बदसलूकी की। इसे उ0प्र0 की राजनीति में **‘‘गेस्ट हाउस काण्ड’’** की संज्ञा दी गई। क्योंकि एक राजकीय गेस्ट हाउस में उस समय मायावती ठहरी हुई थीं। आखिरकार राज्यपाल ने मुलायम सिंह सरकार को बर्खास्त कर दिया। स्थिति का लाभ उठाते हुये भाजपा ने बसपा को बिना शर्त समर्थन देने की घोषणा की और 3 जून 1995 को मायावती ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। इस घटनाक्रम से अतिशीघ्र ही सपा तथा बसपा का ऐतिहासिक दोस्ती दुश्मनी में बदल गयी। इस घटना का उ0प्र0 की राजनीति में इतना असर पड़ा कि सपा तथा बसपा आज तक अलग–अलग है। भाजपा तथा बसपा का अवसरवादी गठबन्धन भी ज्यादा दिनों तक प्रदेश की राजनीति में नहीं रह पाया।

कुछ समय तक प्रदेश में राष्ट्रपति शासन रहा। उसके बाद जब 1996 में आम विधानसभा चुनाव हुए। इस चुनाव में सपा को 109 सीटें प्राप्त हुई लेकिन इसका वोट प्रतिशत 18.10 प्रतिशत से बढ़कर 1996 में 21.99 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार समाजवादी पार्टी को सत्ता से वंचित होना पड़ा। इस चुनाव में सपा दलित वोटों से वंचित हो गई थी। 1996 से 2002 के मध्य बसपा तथा भाजपा का शासन रहा। वर्ष 2002 के विधानसभा चुनावों के आते–आते समाजवादी पार्टी ने अकेले दम पर अपना जनाधार बढ़ा लिया था। इन चुनावों में उसे 25.33 प्रतिशत मतों के साथ 143 सीअैं मिली।लेकिन तुरन्त किसी के साथ गठबंधन न होने की स्थिति में उसे सरकार बनाने का निमंत्रण नहीं मिला। फलस्वरूप 8 मार्च 2002 से 3 मई 2002 तक उ0प्र0 को राष्ट्रपति शासन का सामना करना पड़ा। लेकिन इस बीच बसपा को किसी तरह से बी.जे.पी. से समर्थन मिल गया और मायावती उ0प्र0 की मुख्यमंत्री बनी। लेकिन लगभग 15 माह बाद **‘ताज कॉरीडोर’** मामले में मायावती पर भ्रष्टाचार के आरोप लगने लगे। 25 अगस्त 2003 को भाजपा ने बसपा से समर्थन वापिस ले लिया। इसके बाद समाजवादी ने कुछ दल बदलुओं तथा आन्तरिक तौर पर भाजपा की सहमति से सरकार बनाई जो 29 अगस्त 2003 से 11 मई तक चली। इसके बाद 2007 के विधानसभा चुनाव हुए। इसमें बसपा के सोशल इंजीनियरिंग के सामने समाजवादी पार्टी चुनाव हार गई। इसके साथ–साथ इस चुनाव में मुसलमानों ने टैक्नीकल वोटिंग (राजनीतिक मतदान) किया तथा पिछड़ी जाति के बेनी प्रसाद वर्मा तथा अन्य नेताओं के समाजवादी पार्टी को छोड़ने से समाजवादी पार्टी को भरी पराजय का सामना करना पड़ा। यद्यपि आज भी वह बसपा के बाद नम्बर दो की हैसियत में है। वह यादवों के साथ–साथ पिछड़े वर्ग, मुस्लिम तथा कुछ सवर्ण तथा कुछ दलित के वोटों के साथ उ0प्र0 में टिकी हुई है। संप्रति समाजवादी पार्टी लोकसभा 2009 में जीत के प्रति आश्वस्त है। सभी पार्टियों की तरह **समाजवादी पार्टी** का भी वही पुराना घोषणा पत्र है।

भारतीय राजनीति में यही से **‘व्यक्तिवादी राजनीतिक दलों’** की व्यवस्था की शुरूआत मानी जाती है और प्रदेश में जितने भी राजनीतिक दल है या बन रहे हैं वे सभी तीन दल, कॉंग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और समाजवादी पार्टी से टूट कर बने हैं। समय और परिस्थितियों के प्रभाव से ये सभी दल एक दूसरे से समझौता करते है और तोड़ते हैं, और चुनाव के समय जातिवादी राजनीति का आधार बनते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 रजनी तिवारी, भारत में संसदीय लोकतंत्र, अर्जुन पब्लिशिंग, दिल्ली, 2003, पेज

2. चुनाव निर्वाचन कार्यालय, लखनऊ से प्राप्त ऑंकड़ों के आधार पर।

4. डॉ0 जैन पुखराज एवं फरिया : भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2008, पेज 380.

5. फिलिप बुडरफ, जीम उंद ीव त्नसमक प्दकपं टवसनउम दृ प्प्ए च्ंहम 176ण

6. रजनी कोठारी, च्वसपजपबे पद प्दकपंए व्तपमदज स्वदहउमदए छमू क्मसीपण

7. रजनी कोठारी, च्वसपजपबे पद प्दकपंए व्तपमदज स्वदहउमदए छमू क्मसीपण

8. जीम प्दकपंद च्वसपजपबंस ैलेजमउ दृ ळमवतहम ।ससमद ंदक स्नूपद दृ स्वदकवदए 1963ए च्ंहम 182

9. जीम भ्पदकनेजंद ज्पउमेए छमू क्मसीपए 7 ।चतपसए 1980ण

10. व्तहंदपेमतए 19 थ्मइण्ए 1952ए च्ंहम 1

11. जीम ज्पउमे वि प्दकपंए छमू क्मसीपए 7 ।चतपसए 1980ण

12. बाजपेयी, ए.वी. इण्डिया एट व क्रास रोड्स, नई दिल्ली, बी.जे.पी. प्रकाशन, 1981

13. ए.एस. नारंग, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990, पेज 252.

14. ए.एस. नारंग, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990, पेज 252.

15. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता, हिन्दी संस्करण, भूमिका, पेज नं0 12.

16. आई.ई.एस., 1989, नई दिल्ली.

17. ए.एस. नारंग, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990, पेज 252.

18. जेफ्रेलोट, क्रिस्टोफे, इडियास साइलेंट रिवोल्यूशन परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2005, पेज 393.

19. डॉ0 राम सिंह, पेज 32

20. डॉ0 राम सिंह, पेज 33

21. अमर उजाला, 18 जनवरी, 2002